पुस्तक प्राप्ति स्थान :—

(१) श्री ब्र० दुलीचन्द जैन ग्रन्थमाला
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

(२) श्री टोडरमल स्मारक भवन
४ ए. बापू नगर, जयपुर (राज०)

प्रथमावृत्ति १२००	सुगन्ध दशमी वी० नि० सं० २५००	मूल्य १)६०

[भगवान महावीर २५०० वाँ निर्वाण महोत्सव राष्ट्रीय-उत्सव जयन्ती के उपलक्ष्य में प्रकाशित]

मुद्रक :—
नेमीचन्द बाकलीवाल
कमल प्रिन्टर्स
मदनगंज-किशनगढ़ (राज०)

❋ निवेदन ❋
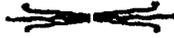
श्री कुन्दकुन्दाचार्यदेव प्रणीत श्री समयसार, पंचास्तिकाय, नियमसार तथा अष्टपाहुड़ में जो अलिंग ग्रहण की गाथा है, वह श्री प्रवचनसारजी शास्त्रमें भी है अतः यह अत्यंत महत्त्वकी गाथा है, ऐसा निर्णय होता है। इस गाथामें पर द्रव्योंसे विभागका साधन-भूत जीवका असाधारण लक्षण बतलाया है। चैतन्य उपवनमें क्रीड़ा करते हुए श्री अमृतचन्द्राचार्यदेवने इस १७२ वीं गाथाके 'अलिंगग्रहण' शब्दमेंसे अपूर्वभावमय २० बोल निकाल कर प्रगट किये हैं। उन पर पूज्य गुरुदेव श्री कानजी स्वामी ने वीर निर्वाण सं० २४७७ में जो अद्‌भुत अपूर्व और सूक्ष्म न्याययुक्त प्रवचन दिये थे वे 'सद्‌गुरु–प्रवचन–प्रसाद' में पहले प्रकाशित हो चुके हैं। इस पुस्तकमें उन्हें पुनः प्रकाशित किया गया है। इन प्रवचनों द्वारा पूज्य गुरुदेव श्री ने जिज्ञासु जीवों पर महान उपकार किया है।

निर्ग्रंथ आचार्य भगवंतोंने अलिंगग्राह्य आत्मा-को परम महिमाका गुणगान किया है। सर्व मुमुक्षु उनके

द्वारा प्रदर्शित पावन पंथ पर विचरण करके शीघ्र आत्म हित साधन करें—ऐसी भावना है।

श्री ब्र० गुलाबचन्दजी जैन, सोनगढ़ के साथ श्री अमरचन्दजी, कानपुर वालों ने मूल मैटर देखकर मिलान करना आदि कार्य किया इसके लिये धन्यवाद है।

सुगन्ध दशमी
वी० नि० सं० २५००

व्यवस्थापक:—
श्री ब्र० दुलीचन्द जैन ग्रन्थमाला
सोनगढ़ (सौराष्ट्र)

❀ श्री अलिंग ग्राह्य आत्माको नमस्कार ❀

[श्री प्रवचनसार गाथा १७२ पर पूज्य श्री कानजी स्वामी के अद्भुत, अपूर्व और सूक्ष्म न्याय युक्त प्रवचन]

वी. नि. सं० २४७७

(माघ कृष्णा-२ शुक्रवार)

अलिंग-ग्रहण-प्रवचन

अरसमरूवमगंधं अव्वत्तं चेदणागुणमसद्दं ।
जाण अलिंगग्गहणं जीवमणिद्दिट्ठसंठाणं ॥१७२॥

अरसमरूपमगंधमव्यक्तं चेतनागुणमशब्दम् ।
जानीह्यलिङ्गग्रहणं जीवमनिर्दिष्ट संस्थानम् ॥१७२॥

चेतनागुण, अशब्द है; अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त है ।
अलिंगग्रहण जानो जीवको, अनिर्दिष्ट संस्थान है ॥

अन्वयार्थः—जीवको अरस, अरूप, अगंध, अव्यक्त, चेतना-गुणमय, अशब्द, अलिंगग्रहण (लिंग से अग्राह्य) और जिसका कोई संस्थान नहीं कहा गया है, इस प्रकारका जानो ।

पर द्रव्योंसे विभागका साधनभूत जीवका असाधारण स्वलक्षण

जीवमें रस नहीं है, गंध नहीं है, स्पर्श गुणकी व्यक्तता नहीं है। वह चेतनगुणमय है। आत्मा शब्द नहीं बोलता है, उसीप्रकार वह शब्दका कारण भी नहीं है, लिंगसे ग्रहण होने योग्य नहीं है और परके आकारसे रहित है—इस प्रकार तुम जानो। यहाँ आचार्य भगवान आदेश करते हैं कि तू तेरे आत्माको ऐसा जान।

टीका—(१) आत्मा में अरसपना है।

आत्मामें रस नहीं है क्योंकि उसका स्वभाव रस गुणके अभावरूप है।

(२) आत्मामें अरूपीपना है।

आत्मामें रूप नहीं है क्योंकि उसका स्वभाव रूप गुणके अभाव रूप है।

आत्मामें रूपित्वका उपचार करनेका कारण

आत्मामें रूपित्व नहीं होने पर भी वह रूपी है अथवा मूर्त है इस प्रकार व्यवहार शास्त्रमें कथन आता है उसका क्या स्पष्टीकरण है?

समाधान—आत्मा निश्चयसे तो अरूपी है परन्तु कर्म के संयोगकी अपेक्षासे व्यवहारसे रूपी कहा है परन्तु इसका अर्थ यह नहीं है कि वह यथार्थमें रूपी हो जाता हो। शास्त्रमें अनेक अपेक्षाओंसे कथन आता है। जीव स्वयं विकार करता है तब जड़-

कर्म निमित्तरूप होते हैं, उस रूपी कर्म के संयोगकी अपेक्षासे आत्मामें रूपित्व का उपचार किया जाता है। विकारी परिणामकी जीवकी योग्यता और उस योग्यताके निमित्तरूपी कर्मका एक क्षेत्र में रहने जितना संबंध बिलकुल ही नहीं होता तो रूपित्वका उपचार भी नहीं हो सकता था। जिस प्रकार सिद्ध दशामें विकार की योग्यता भी नहीं है और निमित्तरूप कर्म भी नहीं हैं अतः सिद्ध दशामें रूपित्वका उपचार भी नहीं होता है, परन्तु संसार दशामें विकारकी योग्यता है वह रूपी कर्मोंके निमित्त बिना नहीं हो सकती है। जीव कर्मके निमित्त बिना का हो तो सिद्ध हो जाय। विकार अशुद्ध पारिणामिक भाव है। जीव स्वयं स्वभावके आश्रय से च्युत होकर कर्मका आश्रय करता है और विकार करता है परन्तु कर्म विकार नहीं कराता है क्योंकि आत्मा तथा कर्मको अत्यंत अभाव है। जड़कर्मको तो ज्ञान भी नहीं है कि मेरा आश्रय करके जीव विकार करता है। जीव विकार करता है वह तो जीवकी भूल है परन्तु वह जीवका त्रिकाली स्वरूप नहीं है। रूपीके लक्ष बिना विकार नहीं होता है। जीवकी ऐसी योग्यता है और रूपी कर्मका संयोग निमित्त है अतः रूपित्वका उपचार किया गया है।

(३) आत्मामें अगंधपना है।

आत्मामें गंधका अभाव है। सुगंध-दुर्गंध आत्मामें नहीं है।

(४) आत्मामें अव्यक्तपना है।

आत्मामें स्पर्शकी व्यक्तताका अभाव है। ठंडेसे उष्ण होना, रूक्षसे चिकना होना, स्थूलसे सूक्ष्म होना, हलके से भारी होना,

कर्कशसे नरम होना-ये सर्व जड़की अवस्थाएं हैं। आत्मामें इस स्पर्शकी व्यक्तताका अभाव है। आत्मामें इस प्रकारका कोई गुण नहीं है कि जिसके कारण स्पर्शकी व्यक्तता हो। अतः आत्मा अव्यक्त है।

(५) आत्मामें अशब्दपना है।

आत्मामें शब्दरूप पर्यायका अभाव है। अज्ञानी मानता है कि जिस भाषाके बोलनेसे जीवका हित हो वह भाषा बोलना और कठोर भाषा बोलनेसे जीवके कलुषितता हो अतः ऐसी वाणी नहीं निकालना। परन्तु भाई! वाणी निकालना अथवा नहीं निकालना वह जीवके आधीन नहीं है। वाणी स्वतंत्र है और जीव स्वतंत्र है। वाणीसे लाभ अथवा हानि नहीं है परन्तु अज्ञानीको भय लगता है कि इस प्रकार वाणीको स्वतंत्र माननेसे तो कोई भी जीव गुरुका बहुमान नहीं करेगा, कोई किसीका उपकार स्वीकार नहीं करेंगे और सब रूखे हो जायेंगे। परन्तु भाई! कोई भी जीव परका बहुमान नहीं करता है। धर्मी जीव अपने भावमें अपने स्वभावका बहुमान करता है और स्वभावमें स्थिर नहीं हो सकता हो तब शुभभावमें गुरुका बहुमान आ जाता है। और केवली भगवानको इच्छा विना वाणी निकलती है और छद्मस्थ जीव इच्छापूर्वक वाणी निकाल सकता है, यह बात भी मिथ्या है। क्योंकि वाणीकी पर्यायका सर्व जीवोंमें तीनों काल अत्यंत अभाव है।

(६) आत्मामें अलिंगग्राह्यपना है।

आत्मामें रूप-रस-गंध आदिका अभाव होनेसे आत्मा किसी भी लिंग अर्थात् चिन्हसे पहचानने योग्य नहीं है। शरीरमें

अमुक प्रकारके रंगसे अमुक भगवानकी पहचान हो ? अमुक प्रकार की वाणी हो तो मुनि पहचाना जाय ? परम औदारिक शरीर हो तो केवली भगवान पहचाने जाँय ? दिव्यध्वनि हो तो तीर्थंकर भगवान पहचाने जा सकें ? इन चिन्होंसे जीव पहचाना जाता होगा ? नहीं। वे सर्व चिह्न तो जड़के हैं। उनसे आत्मा पहिचान में नहीं आता है। अपने चैतन्यगुणसे प्रत्येक आत्मा पहचाना जाता है। **जो स्वयंको नहीं पहिचानता है, वह परको भी नहीं पहिचानता है। स्वयंको जो पहचानता है वही परको यथार्थमें पहिचान सकता है।** किसी बाह्य लिंगसे आत्मा नहीं पहचाना जाता है।

(७) आत्मामें असंस्थानपना है।

शरीरके भिन्न भिन्न संस्थानोंसे अर्थात् आकारोंसे आत्मा नहीं पहचाना जा सकता है। आत्मा का स्वभाव जड़के सर्व आकारोंसे रहित है।

इस प्रकार आत्माको पुद्‌गलसे भिन्न करनेका साधन (१) अरसपना (२) अरूपपना (३) अगंधपना (४) अव्यक्तपना (५) अशब्दपना (६) अलिंगग्राह्यपना और (७) असंस्थानपना है—वह कहा गया।
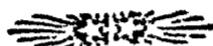
(माघ कृष्णा ३ शनिवार)
२४-२-५१

जीवको अजीवसे भिन्न करनेका साधन-"चेतनामयत्व"

पुद्‌गलसे आत्माको भिन्न करनेका साधन कहा। अब पुद्‌गल तथा अपुद्‌गल अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल-इन चार अजीव द्रव्योंसे आत्माको भिन्न करनेका साधन-चेतना-गुणमयत्व कहते हैं। पुद्‌गल तथा अन्य अजीवसे भिन्न करनेका साधन विकार, काम, क्रोध इत्यादि को नहीं कहा है। चेतना गुण है और चेतन गुणी है। आत्मा जानने देखनेके स्वभावसे अभेद है और उस साधनके द्वारा उसे सर्व अजीवोंसे भिन्न करना वह धर्म है।

जीवको अन्य जीवोंसे भिन्न करनेका साधन "स्वद्रव्याश्रित चेतनामयत्व"

आत्माको प्रथम पुद्‌गलोंसे भिन्न किया। पश्चात् अन्य अजीवोंसे भिन्न किया। अब अन्य जीवोंसे भिन्न करते हैं। अपना चेतनागुण अपने आत्माके आश्रयसे है, अन्य आत्माके आश्रय नहीं है। वह स्वयंका चेतना गुण स्वयंको अनंते केवली, सिद्ध, अनंते निगोद इत्यादि अनंत जीवोंसे भिन्न करता है क्योंकि स्वयंका चेतना गुण स्वयंका स्वलक्षण है। उसको सदा स्वयं धारण कर रखता है। साधकदशामें धर्मकी साधनाके लिये चेतना गुण प्रयुक्त होता है। कोई प्रश्न करता है कि इसमें दया पालना कहां आया ?

उत्तर—अपने चेतनागुणसे स्व जीवका निर्णय करना वह ही स्वदया है। जीव परकी दया पालन नहीं कर सकता है। परसे

भिन्न कहा अर्थात् परका कुछ भी नहीं कर सकता है ऐसा रहा नहीं तथा स्वयको दया-दानके लक्षणवाला नहीं कहा है, परन्तु चैतन्यमय कहा है। ऐसा कहने से ही दया दानादिका विकार क्षणिक है, वह त्रिकाली स्वभावमें नहीं है, इस प्रकार निर्णय होता है। परको तथा स्वको एक मानना संसार मार्ग है और स्वयंको परसे भिन्न साधना वह मोक्षमार्ग है।

अलिंग ग्रहणका अर्थ

अलिंग ग्रहण अर्थात् पर चिह्न द्वारा अथवा पर लिंग द्वारा जीवका अनुभव नहीं किया जा सकता है, किसी चिह्नसे अथवा निमित्तसे आत्माका पता लग सकता नहीं।

"अलिंगग्राह्य" इस प्रकार कहना है तहां जो "अलिंग-ग्रहण" कहा है वह अनेक अर्थोंकी प्राप्तिके हेतु है। अनेक अर्थोका प्रतिपादन करनेके लिये 'अलिंग ग्रहण' शब्द वाचक है और उस शब्द द्वारा कहने योग्य भाव वह वाच्य है। उस भावको जानकर आत्माको लिंगसे भिन्न करना और निर्णय करना धर्म है।

[१] आत्मा इन्द्रिय द्वारा नहीं जानता है।

ग्राहक अर्थात् ज्ञायक आत्मा लिंगों द्वारा अर्थात् इन्द्रियों द्वारा नहीं जानता है—यह अलिंग ग्रहण है। आत्मा स्व तथा परको इन्द्रियोंसे नहीं जानता है। स्व-पर दोनों ज्ञेय है। स्व-पर ज्ञेयोंके ज्ञाता ऐसे आत्माको इन्द्रियोंसे ज्ञान नहीं होता है। यहां अतींद्रिय ज्ञानकी प्रसिद्धि है।

"चाबी देनेसे घड़ी चलती है, आत्मा है तो शरीर चलता है, अग्नि थी तो पानी गर्म हुआ, पेट्रोल था तो मोटर चली, स्त्री थी तो रोटी बनी, हाथ था तो लकड़ी ऊँची हुई, इसप्रकार प्रत्यक्ष इन्द्रियों से दिखाई देता है"—अज्ञानी इस प्रकार तर्क करता है।

परन्तु यह मान्यता भूल भरी है, अज्ञानी जीव इन्द्रियोंकी आड़ सहित संयोगोंको देखता है। ज्ञान संयोगका नहीं है, ज्ञान इंद्रियका नहीं है, परन्तु ज्ञान आत्माका है—इस प्रकार नहीं मान कर, इन्द्रियोंसे ज्ञान होता है,—ऐसा जो मानता है वह संयोगको देखता है। आत्माका स्व-पर प्रकाशक स्वभाव है। परको भी इन्द्रियोंसे जानना ऐसा उसका स्वभाव नहीं है। स्वको तो इंद्रियोंसे नहीं जानता है और पर पदार्थोंका भी आंख, कान, नाक आदि पांच इन्द्रियोंसे ज्ञान नहीं होता है।

स्व-पर प्रकाशक ज्ञान स्वभाव स्वयंके लिए है; इंद्रियों से नहीं।

प्रश्न—आंखसे मोतिया उतरवाना कि नहीं? मोतिया उतरवाते हैं तो दिखता है और नहीं उतरवाते हैं तो नहीं दिखता।

उत्तरः—भाई, मोतिया उतरवाने के पहले या पीछे आंख से नहीं दिखाई देता है। आत्मामें ज्ञान है, इन्द्रियोंमें ज्ञान नहीं है। मोतिया उतरवाने से पहले भी अपने ज्ञानके उघाड़की योग्यता अनुसार जानता है और पीछे भी अपनी योग्यता अनुसार जानता है। स्वयंका स्व-पर प्रकाशक स्वभाव इन्द्रियोंके कारण है? पर

प्रकाशक स्वभाव इंद्रियोंके कारण है ? नहीं। ज्ञान स्वभाव इन्द्रियोंका नहीं है, इन्द्रियोंके कारण नहीं है। स्व और पर दोनों को जाननेका स्वयंका स्वभाव है, उसे चूक कर (उससे च्युत होकर) अज्ञानी जीव इन्द्रियों द्वारा ज्ञान होता है—इस प्रकार मानता है, वह भ्रम है।

ज्ञायक स्वभावकी प्रतीति रूप 'नाक' (प्रतिष्ठा) बिना ज्ञान सम्यक् नहीं होता।

बाजारमें कोई भी ग्राहक माल लेने जाये तो माल लेनेके लिए उसके पास नगद रुपया अथवा 'नाक' अर्थात् 'प्रतिष्ठा' होनी चाहिये। नगद रुपयोंसे माल मिलता है और रुपया न हो तो 'नाक' (प्रतिष्ठा) से माल मिलता है, परन्तु एक भी न हो तो भिखारी को माल नहीं मिलता है। इसी प्रकार यह आत्मा ग्राहक है उसे माल लेना है अर्थात ग्रहण करनेका-जाननेका कार्य करना है। यदि उसके पास केवलज्ञानरूपी नगद रुपया हो तो सबको प्रत्यक्ष जान लेता है। यदि वह न हो तो अल्पज्ञ अवस्था में अतीन्द्रिय ज्ञानस्वभाव की प्रतीतिरूप प्रतिष्ठा हो, तो वह जाननेका कार्य यथार्थ कर सकता है। परन्तु जिसके पास केवलज्ञान रूपी नगद रुपया नहीं है और अखंड ज्ञायक की प्रतीति रूप प्रतिष्ठा नहीं है उस जीवको भिखारी की भांति ज्ञेयका माल यथार्थ रीतिसे देखनेको नहीं मिलता है अर्थात् उसका ज्ञान यथार्थ नहीं होता है।

(१) अज्ञानी जीव 'इन्द्रियोंसे ज्ञान होता है' ऐसा मानते हैं वह मान्यता मिथ्या है क्योंकि जड़ इन्द्रियोंका आत्मामें अत्यंत

अभाव है अतः इन्द्रियां आत्माको किंचित् भी सहायता नहीं कर सकती हैं।

(२) इन्द्रियोंमें ज्ञानस्वभावका अभाव है। जिसमें ज्ञान स्वभाव ही नहीं है वह ज्ञान किस प्रकार करे ?— अर्थात् नहीं ही करता है।

अतः ग्राहक अर्थात् ग्रहण करने वाला-ज्ञाता जिस प्रकार है, उसे उसी प्रकार यथार्थ जानना चाहिये। यह ज्ञेय अधिकार है। स्वयंके द्रव्य-गुण-पर्याय तथा परके द्रव्य-गुण-पर्यायमें से एक भी वस्तुको आत्मा इन्द्रियोंसे नहीं जानता है परन्तु अपने ज्ञानसे जानता है—इस प्रकार निर्णय करे उसका ज्ञान सम्यक् होता है।

"अज्ञानी वर्तमान पर्यायका ज्ञान संयोगसे करता है"

ज्ञायक स्वभावका भान नहीं होनेके कारण अज्ञानी भ्रांतिका सेवन करता है और मानता है कि इस हाथसे लकड़ी ऊपर उठी, आंखसे प्रत्यक्ष दिखाई दिया, शब्दसे ज्ञान हुआ, दुकान पर मैं था तो रुपया आया—इस प्रकार संयोगसे देखता है। अपने ज्ञानकी पर्याय इंद्रियोंसे होती है इस प्रकार मानने वाला जीव पर पदार्थोंकी पर्यायको भी संयोगसे देखता है। वह आत्मा नहीं कहलाता है। अज्ञानी जीव भले ही यह मानता हो कि मुझे ज्ञान इन्द्रियोंसे होता है परन्तु वास्तवमें तो उसे भी ज्ञान तो आत्मासे ही होता है परन्तु वह उस प्रकार नहीं मानता है, अतः उसको चैतन्यका अवलंबन नहीं है। इस प्रकार जो जीव स्व की पर्यायको स्वतंत्र नहीं मानता

है उसे पर पदार्थोंकी पर्यायें स्वतंत्र देखनेकी शक्ति विकसित नहीं होती है।

अज्ञानी उल्टी मान्यता करे तो भी वस्तुका स्वभाव परिवर्तित नहीं होता है परन्तु वह अपनी मान्यतामें दोष उत्पन्न करके दुःखी होता है।

'वर्तमान पर्यायका यथार्थ ज्ञान किया' कब कहलाता है?

'स्व तथा पर पदार्थोंकी वर्तमान अवस्थाका सच्चा ज्ञान किया' कब कहलाता है ?–कि जब उस उस पदार्थका स्वभाव जाने तो जो जीव अपना ज्ञान अपने ज्ञाता स्वभावके आश्रयसे होता है परन्तु इंद्रियोंके तथा परपदार्थोंके अवलंबनसे नहीं होता—ऐसा मानता है वह जीव पर पदार्थोंकी पर्यायोंको भी उनके द्रव्यके आश्रयसे (उत्पन्न) हुई मानता है परन्तु अन्यके आश्रयसे (उत्पन्न) हुई नहीं मानता है। इस प्रकार मानकर निर्णय करता है कि मोटर चलनेके कालमें अपने कारणसे चलती है और रुकनेके कालमें अपने कारण रुकती है। पेट्रोलके साथ मोटरका संबंध नहीं है। लकड़ी अपने कारण ऊंची नीची होती है, जीवसे नहीं होती। विद्यार्थीके पढ़ने की पर्याय विद्यार्थीके कारण है, शिक्षकके कारण नहीं। वे वे पर्यायें अपने अपने द्रव्यके आश्रयसे होती हैं, पर्याय पर्यायवानकी है, वह अन्यके कारण नहीं है। निगोदसे लेकर सभी जीव अपने आत्मासे जानते हैं परन्तु इन्द्रियोंसे नहीं जानते। एकेन्द्रिय, द्वीन्द्रिय, त्रीन्द्रिय जीवोंके आंखें नहीं हैं अतः देख नहीं सकते हैं और

चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीवोंको आंखें हैं अत: देख सकते हैं यह बात मिथ्या है। ज्ञानका उघाड़ परके आश्रयसे नहीं है उसी प्रकार परमेंसे नहीं आता है। वह ज्ञानकी पर्याय पर्यायवान द्रव्यमेंसे आती है। क्या आत्मा किसीभी समय अपने जानने देखनेके स्वभाव रहित है कि वह इन्द्रियों द्वारा जाने ? कभी नहीं। निगोदमें भी अपना स्वभाव विद्यमान है; वहां भी स्वयंसे जानता है। इस प्रकार पर्याय पर्यायवानकी है ऐसा निर्णय करे तो 'वर्तमान पर्यायका सच्चा ज्ञान किया' कहलाता है।

प्रश्न– यहां आप कहते हो कि इन्द्रिय विना ज्ञान होता है परन्तु शास्त्रमें उल्लेख है कि इन्द्रिय और मनके अवलंबनसे मतिज्ञान और श्रुतज्ञान होता है वह अप्रमाण हो जायेगा ?

समाधान :

व्यवहारनय संयोगोंका ज्ञान कराता है।

इद्रियों और मन द्वारा मतिज्ञान होता है वह व्यवहारका कथन है। व्यवहारसे मतिज्ञानमें अनेक भेद पड़ते हैं परन्तु निमित्त की अपेक्षा नही लेने पर एक ही भेद होता है। जीव अपने आत्मासे ज्ञान करता है तव अन्य कौन वस्तुओंकी उपस्थिति होती है, व्यवहारनय उनका ज्ञान कराता है। ये सभी भेद अपनी पर्यायकी उस उस समयकी योग्यताके कारण पड़ते हैं। इन्द्रियां आदि वाह्य संयोगोंके कारण भेद नहीं हैं, परन्तु अपने कारण भेद पड़ते हैं तव निमित्त पर आरोप दिया जाता है।

यहां तो भेदका भी निषेध करते हैं। निमित्तोंके आश्रयसे ज्ञान होता ही नहीं है। ज्ञायकके आश्रयसे ज्ञान विकसित होता है। इन्द्रियां तथा परवस्तु आत्माको तीनकालमें स्पर्श ही नहीं करती। अतः उनके द्वारा आत्मा जान ही नहीं सकता है। परन्तु अपने अस्तिरूप ज्ञानस्वभावके द्वारा जानता है। अज्ञानी स्वयंको भ्रमणाके कारण 'संयोगसे मैं जानता हूँ' इस प्रकार मानता है, यह मान्यता स्वभावदृष्टिका घात करती है। वह तो सभी वस्तुओंको संयोगसे देखता है। ज्ञानी तो स्वयंको प्रत्यक्ष ज्ञानसे जानता है इस प्रकार अपना निर्णय करे तो परपदार्थको भी उसके स्वभावसे जाननेका निर्णय कर सकता है।

अल्पज्ञताके समय इन्द्रियां, मन आदि निमित्त हैं और सर्वज्ञदशाके समय इन्द्रियां, मन आदि निमित्त नहीं हैं। परन्तु अल्पज्ञ दशामें इन्द्रियां, मन निमित्त हैं अतः उनके द्वारा जानता है यह बात दूषित है। कोई भी जीव स्पर्शेन्द्रियसे स्पर्श नहीं करता कानसे नहीं सुनता और मनसे विचार नहीं करता परन्तु जाननेका कार्य आत्मा स्वयंसे करता है। 'इन्द्रियों और मन द्वारा ज्ञान हुआ' यह संयोग बतानेके लिये व्यवहारनयसे कथन किया है, व्यवहार नयका ऐसा अर्थ समझना, और संयोग बिना ही आत्मा ज्ञान करता है, ऐसा निश्चयनयका अर्थ समझना। नयके अर्थ शास्त्र नहीं बोलता है परन्तु आत्मा अपने ज्ञान द्वारा भिन्न भिन्न अपेक्षा समझ लेता है। मतिज्ञान, श्रुतज्ञान अप्रमाण नहीं है परन्तु प्रमाण ज्ञान हैं, इस प्रकार स्वाश्रय द्वारा यथार्थ समझना चाहिये।

आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान मय है।

आत्मा अलिंगग्रहण इस प्रकार है। अ=नहीं, लिंग= इंद्रियां और ग्रहण=जानना। अर्थात् आत्माको इंद्रियों द्वारा ज्ञान नहीं होता अतः अलिंगग्रहण है। अतः आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञानमय है ऐसे भावकी प्राप्ति होती है। अतीन्द्रिय ज्ञानमय अर्थात् इन्द्रिय और मन रहित है ऐसा निर्णय होता है। कब ? केवलज्ञान होनेके बाद ?—नहीं। केवलज्ञानी तो अतीन्द्रिय ज्ञानमय ही है, परन्तु छद्मस्थ जीव छद्मस्थ दशामें भी इन्द्रियों द्वारा नहीं जानता है। इस प्रकार होने पर भी "मैं इन्द्रियोंसे जानता हूँ" इस प्रकार अज्ञानी अज्ञानके कारण मानता है वह मान्यता संसार है। अतः इन्द्रियोंपर से लक्ष हटाकर, ज्ञायक स्वभावका लक्ष करे उसे यथार्थ में अतीन्द्रिय भावकी प्राप्ति स्वयंमें होती है।

जो स्वको जानता है वही देव-शास्त्र-गुरुको यथार्थ जानता है

यहां कोई प्रश्न करे कि इस प्रकार स्वतंत्र माननेसे एक दूसरेकी कोई सहायता नहीं लेगा, शुष्क हो जायेगा और देव-शास्त्र-गुरुको नहीं मानेगा ? तो ?

समाधान—भाई, ये सब तेरी भ्रमणा है। जो यथार्थ समझता है वही देव शास्त्र गुरुको यथार्थ समझता है, क्योंकि देव शास्त्र गुरु कहते हैं कि तू तेरे ज्ञायकस्वभावसे जानता है, इन्द्रियोंसे अथवा देव, शास्त्र, गुरुसे नहीं जानता है। एकेन्द्रियसे लेकर पंचेन्द्रिय तकके सभी जीवोंकी स्वपरको जाननेकी शक्ति स्वयंसे है इस प्रकार

जो अपने ज्ञान स्वभावको यथार्थ जानता है वही जीव परको यथार्थ जानता है। देव शास्त्र गुरु आदि पदार्थोंका अस्तित्व है इसलिये पर ज्ञात होता है यह बात सत्य नहीं है परन्तु **स्व आत्माको जानने पर स्वमें परपदार्थ ज्ञात होते हैं, ऐसी सच्ची प्रतीतिका और ज्ञान में ही केवलज्ञानका विकास है** देव शास्त्र गुरु पर हैं, उन्हें मानना यथार्थ कब कहा जाय ? कि देव-शास्त्र-गुरु और इंद्रियां पर हैं, उनसे मैं नहीं जानता हूं, परन्तु स्वयंको जाननेमें पर भी जाननेमें आ जाता है, इस प्रकार निर्णय करे तो। और उसी जीवने देव-शास्त्र-गुरुको यथार्थ माना और जाना कहलाता है।

इस प्रमाणसे अतीन्द्रिय ज्ञानकी प्राप्ति होनेसे परावलंबन छूटकर स्वावलंबन उत्पन्न होता है और उसमेंसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी पर्याय प्रगट होती है।

[२] आत्मा इन्द्रियोंसे ज्ञात होने योग्य नहीं है।

अब दूसरे कथनमें आत्मा इन्द्रियोंसे ज्ञात होने योग्य नहीं है—ऐसा कहते हैं। आत्मा इन्द्रियोंसे स्व तथा परको नहीं जानता है परन्तु स्वयंसे स्व-पर दोनोंको जानता है इस प्रकार पहले कथन में कह आये हैं। अब इस कथनमें कहते हैं कि प्रमेय ऐसा आत्मा इन्द्रियोंसे ज्ञात हो, ऐसा नहीं है।

१ आत्मा ज्ञानमें ज्ञात ही नहीं होता इस प्रकार की कुछ जीवोंकी मान्यता है, वह मान्यता इस (दूसरे कथन से) गलत

सिद्ध होती है। क्योंकि आत्मामें भी प्रमेयत्व गुण है और प्रमेयत्व गुण न माने तो गुणी अर्थात् आत्माके नाशका प्रसंग आता है अतः यह मान्यता दोषपूर्ण है। प्रमेयत्वगुणके कारण आत्मा ज्ञानमें ज्ञात होता है ऐसा वह प्रमेय पदार्थ है।

२ आत्मा इन्द्रियोंसे ज्ञात हो ऐसी कुछ जीवोंकी मान्यता है वह भी इससे (दूसरे कथन से) गलत सिद्ध होती है। क्योंकि आत्मा अपने ज्ञान स्वभावसे ज्ञात होने योग्य है परन्तु इंद्रियोंसे ज्ञात होने योग्य नहीं है। ज्ञान स्वभाव आत्माका है, इन्द्रियोंका नहीं है।

शास्त्र तथा वाणीसे धर्म नहीं होता

यहां कोई प्रश्न करता है कि भगवानकी वाणी अथवा शास्त्र न सुने वह आत्माको किस प्रकार जान सके ? क्योंकि देशना-लब्धि मिले बिना तो आत्माका ज्ञान ही नहीं होता और धर्म प्राप्त नहीं होता न ?

समाधान—भाई, वाणी और शास्त्र तो पर है, जड़ है, उससे ज्ञान नहीं होता उसी प्रकार कान भी जड़ हैं। इन्द्रियोसे ज्ञान हो और आत्मा ज्ञात हो ऐसा आत्माका स्वभाव ही नहीं है। वाणी तथा इन्द्रिय रहित अपने अतीन्द्रिय स्वभावसे आत्मा ज्ञात होने योग्य है। तथा स्वका ज्ञान करने पर, पर ऐसे शास्त्र और वाणी उनका ज्ञान भी यथार्थ ध्यानमें आता है कि पूर्वकालमें शास्त्र तथा वाणीकी ओर लक्ष था। स्व-पर प्रकाशक स्वभाव विकसित होते

ही परका यथार्थ ज्ञान होता है। शास्त्र, शब्द, कान, आँखमें आत्मा नहीं है तो फिर शास्त्र तथा वाणी द्वारा आत्मा कैसे ज्ञात हो? ज्ञात नहीं ही होगा। परन्तु आत्मा अपने ज्ञायक स्वभाव द्वारा ही ज्ञात हो, ऐसा है। यह बात लोगोंने सुनी ही नहीं है और उनके कानोंमें पड़ी भी नहीं है। अतः मँहगी (कठिन) लगती है।

वाणी से धर्म नहीं होता तो फिर वाणी सुननेकी क्या आवश्यकता है?

प्रश्न—अभी आप ही कहते हो कि कान तथा वाणीसे ज्ञान नहीं होता और कहते हो कि यह बात कानोंमें पहुँची ही नहीं है। तो फिर इस बातको कानोंमें पहुँचने और सुनने की क्या आवश्यकता है? क्योंकि आप तो इस प्रकार कहते हो कि कान तथा वाणीसे तो आत्माका ज्ञान नहीं होता है।

समाधान—'कानोंमें नहीं पड़ी है' इस प्रकार जो कहा है वह निमित्तसे और संयोगसे कहा है, ऐसी बात सुननेको मिली ही नहीं, अर्थात् उस जीवकी स्वयं की ऐसी योग्यता भी नहीं है—ऐसा जानना। समय समयकी समझनेकी पर्याय तो सत् है। वह पर्याय कान तथा शब्दके कारण नहीं है। उसमें उतनी समझनेकी योग्यता नहीं है अर्थात् 'बात कानोंमें नहीं पड़ी है' इस प्रकार कहनेमें आया है। और यह बात जिसके कानोंमें पड़े और अपने कारण समझे तो भी वह ज्ञान खंड खंड वाला है। उससे भी अखंड आत्मा का लाभ नहीं है क्योंकि अंश से अंशीका लाभ नहीं हो सकता। खंड खंड अपूर्ण ज्ञानकी योग्यता परसे लक्ष उठा कर अखंड परिपूर्ण आत्मा

पर लक्ष करे तो आत्माको धर्म होता है। तो फिर जिसने खंड खंड ज्ञानवाली योग्यता भी प्राप्त नहीं की है, जिसको निमित्त रूपसे अविरोध वाणी कानों में पड़ी नहीं है अर्थात् व्यवहारसे देशना लब्धिका निमित्त प्राप्त नहीं हुआ है उसे तो धर्म कहांसे हो? अर्थात् वैसे जीव को कभी धर्म होगा ही नहीं—यह कहनेका भाव है। वहां भी उस जीव की योग्यता बतलाना है।

आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्षका विषय नहीं है

इस प्रकार आत्मा अलिंग ग्रहण है। आत्मा इन्द्रियों से ग्राह्य नहीं है अर्थात् इन्द्रियोंसे ज्ञात होने योग्य नहीं है अतः आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्षका विषय नहीं है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

अज्ञानी जीव मानता है कि पर बिना, शब्द बिना, कान बिना आत्मा ज्ञात नहीं होता परन्तु उसकी मान्यता मिथ्या है। वह मान्यता ही आत्मस्वभावसे विपरीत है। पर बिना ही ज्ञात हो, वैसा स्वभाव है। आत्मा इंद्रिय प्रत्यक्षका विषय नहीं है परन्तु ज्ञान प्रत्यक्षका विषय है उसमेंसे ऐसा भाव निकलता है।

इन्द्रियोंके आश्रयसे आत्मा ज्ञात नहीं होता परन्तु आत्माके आश्रय से आत्मा ज्ञात होता है इस प्रकार ध्यान आते ही इन्द्रियोंकी ओरका लक्ष्य छूट जाता है और अपने ज्ञानस्वभाव प्रत्यक्ष का श्रद्धा-ज्ञान होने पर धर्म होता है।

ज्ञान स्वभावमें ज्ञात आत्म ज्ञेय पदार्थ कैसा है ?

(माघ कृष्णा ४ रविवार)

आत्मा ज्ञेय है और वह ज्ञान द्वारा ज्ञात होने योग्य पदार्थ है। लिंग द्वारा वह ज्ञात नहीं होता।

(१) आत्मा इंद्रियोंसे जाने वैसा वह ज्ञेय पदार्थ नहीं है।

उसमें प्रथम वचन—आत्माको इन्द्रियोंसे ज्ञान नहीं होता, इस ज्ञेयपदार्थ (आत्मा) का वैसा स्वभाव है। इस ज्ञेय तत्त्व अधिकारमें अलिंगग्रहण कहनेका कारण यह है कि आत्मा ज्ञान-दर्शन आदि अनंत गुणों तथा पर्यायोंका पिंड है। वह ज्ञेय पदार्थ इंद्रियोंसे कार्य करे वैसा उसका स्वभाव नहीं है। इन्द्रियके अवलम्बन बिना स्वयंसे ज्ञान करे वैसा उस ज्ञेयका स्वभाव है। ज्ञेय जिस प्रकार हैं उस प्रकार ज्ञेयका स्वभाव जाने और स्वसन्मुख होकर श्रद्धा करे तो धर्म हो। विरुद्ध जाने तो धर्म कहांसे हो ? नहीं हो, अतः आत्मा इन्द्रियों द्वारा ज्ञान करे वैसा वह ज्ञेय पदार्थ नहीं है।

(२) आत्मा इन्द्रियों से ज्ञात हो वैसा वह ज्ञेयपदार्थ नहीं है।

द्वितीय वचन—आत्मा इन्द्रियों द्वारा ज्ञात हो ऐसा वह ज्ञेय पदार्थ नहीं है, अंतर्मुख देखनेसे ज्ञात हो ऐसा है। यह ज्ञेय अधिकार है अन्य रीतिसे कथन करें तो सम्यग्दर्शन-अधिकार है। इन्द्रियोंसे ज्ञात हो वह आत्मा नहीं है। सम्यग्दर्शनका विषय आत्मा है अतः इन्द्रियों द्वारा सम्यग्दर्शन नहीं होता अर्थात् धर्म नहीं होता।

आत्मा वस्तु ज्ञेय है। ज्ञेयं कहो कि प्रमेय कहो—दोनों एक ही हैं। जगतमें जितने स्व-पर प्रमेय हैं वे किसी न किसी ज्ञानका विषय अवश्य होते हैं क्योंकि उनमें प्रमेयत्व नामका गुण है। आत्मा इन्द्रियों द्वारा ज्ञान करे वैसा उसका स्वभाव नहीं है, इन्द्रिय द्वारा ज्ञान करे तो वह प्रमाण नहीं रहता। प्रमेयको ज्ञानमें ज्ञात होने योग्य कहा है परन्तु इद्रियोंसे ज्ञात होने योग्य नहीं कहा। छहों द्रव्य अपने प्रमेयत्व गुणके कारण किसी न किसी ज्ञानका विषय होते हैं ऐसा कहा है, परन्तु इन्द्रियों द्वारा ज्ञात हो वैसा उसका स्वरूप नहीं है। आत्म वस्तु ज्ञान, दर्शन चारित्र आदि अनन्त शक्तियोंका पिंड है। वह प्रमेय इन्द्रियोंका विषय हो वैसा नहीं है। आत्मा प्रमाता और प्रमेय दोनों है। जगतके पदार्थ प्रमेय हैं, इन्द्रियां प्रमेय हैं। उस प्रमेयमें भी ऐसी शक्ति नहीं है कि वह आत्माको जाने और आत्मा स्व-प्रमेय है, उसका स्वभाव ऐसा नहीं है कि वह इन्द्रियोंसे ज्ञात हो।

प्रश्न—तो फिर इन्द्रियां जीवको क्यों मिली हैं? तथा उसे इन्द्रियवाला कैसे कहा है?

उत्तर—किसी पदार्थको कोई अन्य पदार्थ मिलता नहीं है। कोई पदार्थ अन्य पदार्थमें न जाता है न आता है। जगतके ज्ञेय पदार्थ अपने कारणसे आते हैं और जाते हैं। परमाणु की पर्याय आत्माके एक क्षेत्रमें आई उसकी पहिचान कराई है।

निश्चयसे इन्द्रियां परमाणुकी पर्याय है। परन्तु उसकी वर्तमान पर्यायमें पुद्गलकी अन्य पर्यायसे भिन्नता है अतः उसकी

इन्द्रिय रूपसे पहिचान कराई है। निश्चयसे पुद्गल परमाणुओंमें अंतर नहीं है। इन्द्रिय ज्ञानका कथन व्यवहारसे इन्द्रियोंका संयोग बतानेके लिये है परन्तु उनसे ज्ञान होता है वैसा उसका अर्थ नहीं है। परन्तु जीवके उघाड़की योग्यता के समय इन्द्रियां निमित्तरूप होती हैं उनका ज्ञान कराया है।

ज्ञानसे आत्मा ज्ञात हो इस प्रकार श्रद्धा स्वीकार करती है।

आत्मा स्वयं प्रमेय है। स्वयं इन्द्रियों द्वारा ज्ञात हो ऐसा प्रमेय पदार्थ नहीं है, अतः वह इन्द्रिय प्रत्यक्षका विषय नहीं है, परन्तु ज्ञान प्रत्यक्षका विषय है। यह सम्यग्दर्शन अधिकार है। आत्मा श्रद्धाका अर्थात् सम्यग्दर्शनका विषय है, अतः श्रद्धा इस प्रकार स्वीकार करती है कि इन्द्रियोंसे ज्ञात हो ऐसा आत्म पदार्थ नहीं है परन्तु ज्ञान प्रत्यक्षसे ज्ञात हो ऐसा आत्म पदार्थ है। स्वाश्रय द्वारा श्रद्धाका इस प्रकार स्वीकार करना धर्म है। ऐसी श्रद्धा और ज्ञान बिना व्रत-तप आदि सच्चे नहीं हो सकते।

(३) आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्षपूर्वक अनुमानसे ज्ञात हो वैसा नहीं है।

तृतीय वचन—धूम्र द्वारा अग्निका ग्रहण होता है। जहां धुआं होता है वहां अग्नि होती ही है। उसी प्रकार बाह्य किन्हीं इन्द्रियोंसे ज्ञात होने योग्य चिह्न द्वारा आत्माका ज्ञान नहीं होता वैसा वह ज्ञेय है।

शरीरके हिलने-चलनेसे, वाणीके बोलनेसे तथा गर्भके बढ़नेसे—उन सर्व चिह्नोंसे क्या यथार्थमें आत्मा पहचाना जा

सकता है ? नहीं। उस लक्षणसे आत्मा नहीं देखा जा सकता। जिस प्रकार तापका माप थर्मामीटर द्वारा ज्ञात होता है उसी प्रकार बाह्य किसी चिह्नसे आत्मा नहीं पहचाना जा सकता। यहां यह कहा है कि आत्माके जाननेके लिये इन्द्रियोंके अनुमानकी आवश्यकता नहीं है।

कोई कहे कि आत्मा आत्माके ज्ञान द्वारा पहिचाना जाय और पर पदार्थ इन्द्रियों द्वारा पहिचाने जांय तो वह स्थूल अज्ञान है। कोई भी पदार्थ इन्द्रियोंसे ज्ञात नहीं होता, ज्ञानसे ज्ञात होता है। तथा आत्मा निश्चयसे आत्मा द्वारा पहिचाना जाय और व्यवहारसे इन्द्रियों द्वारा पहिचाना जाय, इस प्रकार जो कहता है वह भी भूल है, वह मिथ्या अनेकान्त है। आत्मा आत्मा द्वारा ही पहिचाना जाता है और अन्य किसी चिह्न-इन्द्रियां अथवा इन्द्रियोंके अनुमान द्वारा नहीं पहिचाना जाता, वही सम्यक् अनेकान्त है और वह धर्म है।

यहां अलिंग ग्रहणका अर्थ इस प्रकार है कि अ=नहीं, लिंग=इन्द्रियोंसे ज्ञात होने योग्य चिह्न, ग्रहण—जानना। अर्थात् आत्मा किसी इन्द्रिय गम्य चिह्नसे ज्ञात नहीं होता। जैसे शरीर छोटेसे बड़ा होता है ऐसे बाह्य चिह्नसे आत्माका निर्णय नहीं होता अतः आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमानका विषय नहीं है—ऐसा उसमेंसे अर्थ निकलता है। आत्मा ऐसा ज्ञेय पदार्थ है कि वह ज्ञान से प्रत्यक्ष ज्ञात होता है-उसमें इन्द्रियके अनुमानकी आवश्यकता नहीं है।

(४) आत्मा केवल अनुमानसे ही ज्ञात हो ऐसा वह ज्ञेयपदार्थ नहीं है।

अन्य आत्मा द्वारा मात्र अनुमानसे ज्ञात हो ऐसा जीवका स्वभाव नहीं है। यहां अलिंग ग्रहणका अर्थ : अ=नहीं, लिंग=अनुमान ज्ञान और ग्रहण=जानना। अर्थात् आत्मा मात्र अनुमान ज्ञानका विषय हो वैसा वह ज्ञेय पदार्थ नहीं है। यहां 'मात्र अनुमान' कहा है। 'मात्र' कहनेका तात्पर्य यह है कि आत्मा आंशिक स्वसंवेदन सहित अनुमानका विषय तो है, परन्तु केवल अनुमानका विषय नहीं है। जो आत्मा केवल अनुमानका ही विषय हो तो आत्मा कभी भी प्रत्यक्ष ज्ञानका विषय नहीं हो सकता। केवलज्ञानमें तो वह सर्वथा प्रत्यक्ष ज्ञात होता है और नीचली दशा में श्रुतज्ञानमें प्रतीतिमें आता है। साधकदशामें भी मात्र अनुमानसे ज्ञात होने योग्य नहीं। साधकदशामें मात्र अनुमान ज्ञानसे ज्ञात होता हो तो स्वसंवेदन आंशिक प्रत्यक्ष नहीं हो सकता। और स्वसंवेदन ज्ञान साधकदशामें आंशिक प्रत्यक्ष न हो तो वह बढ़कर संपूर्ण प्रत्यक्ष नहीं हो सकता, अतः साधकदशामें भी स्वसंवेदन प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान ज्ञानका विषय होता है। अन्यको अथवा जिनको, यह आत्मा जानना है, उन्हें स्वसंवेदन ज्ञान होना ही चाहिये तो ही वे जीव इस आत्माको जान सकते हैं। अन्य जीव स्वसंवेदन सहित अनुमान ज्ञान करके ज्ञान विस्तृत करे और इस आत्माको पहचान करे तो ठीक है परन्तु अन्य जीव स्वसंवेदन बिनाके मात्र अनुमानसे इस आत्माको पहिचानने जाय तो उसके द्वारा यह आत्मा ज्ञात हो ऐसा यह ज्ञेय पदार्थ नहीं है।

(५) आत्मा केवल अनुमानसे ही जाने ऐसा वह ज्ञेयपदार्थ नहीं है।

यह आत्मा मात्र अनुमान करके स्वयंको तथा परको नहीं जानता है। अलिंग ग्रहणका अर्थः—अ=नहीं, लिंग=अनुमान ज्ञान, ग्रहण–जानना। आत्मा मात्र अनुमान ज्ञानसे स्वयंको अथवा परको जाने ऐसा नहीं है। अतः स्व और पर दोनोंको जाननेके लिए प्रत्यक्ष स्वसंवेदन ज्ञान होना चाहिये। आत्मा स्वयं मात्र अनुमान करने वाला हो तो कभी भी प्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट नहीं कर सकता। अनुमान ज्ञान तो है परन्तु मात्र अनुमान माने तो वह यथार्थ नहीं है। अनुमानके साथ आंशिक स्वसंवेदन ज्ञान है वह प्रत्यक्ष है और वह बढ़कर संपूर्ण प्रत्यक्ष ऐसा केवलज्ञान होता है और तब अनुमानका अभाव होता है। अतः यहाँ मात्र अनुमानसे नहीं जानता है ऐसा कहा है।

स्वसंवेदन ज्ञान बिना पर पदार्थोंका ज्ञान यथार्थ नहीं है

आत्मा स्वंयको तो अनुमानसे नहीं जानता है परन्तु अन्य जीवोंको, शरीरको तथा पर पदार्थोंको मात्र अनुमान से जाने वैसा भी उसका स्वभाव नहीं है। केवल अनुमान ज्ञान से पर पदार्थों का ज्ञान करना वह यथार्थ ज्ञान नहीं है। इस प्रकार आत्मा केवल अनुमान करने वाला ही नहीं है ऐसे भावकी प्राप्ति होती है। देव, गुरु, स्त्री, कुटुम्ब परिवार तथा निगोदसे लेकर सिद्ध तकके सभी जीवोंको केवल अनुमानसे जान ले, वैसा उन ज्ञेयोंका स्वभाव नहीं है। आंशिक स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ज्ञान होना चाहिये।

स्वसंवेदन सहित अनुमान ज्ञान द्वारा जाने वही यथार्थ ज्ञान कहलाता है। स्वसंवेदन बिना मात्र अनुमान वह सच्चा अनुमान भी नहीं कहलाता है।

क्रियाका स्वरूप

कोई प्रश्न करता है कि यह सब जानने के पश्चात् हमारी मानी हुई क्रिया करना तो यथार्थ है न ? समझ पूर्वक क्रिया करनेमें क्या बाधा है ?

समाधान—समझ पूर्वक क्रियामें रागकी और शरीरकी क्रिया नहीं आती है। आत्माके भान बिना विधि किसको कहना ? जो तुझे सच्ची समझ हुई होगी तो तुझे यह प्रश्न ही नहीं होगा क्योंकि समझ कहनेसे उसमें ज्ञानकी क्रिया आती है और शरीर तथा रागकी क्रियाका निषेध होता है।

प्रश्न—ज्ञानपूर्वक क्रियामें हमारी मानी हुई क्रियाका मिश्रण कीजिये तो ?

उत्तर—भाई, दूध पाकमें किंचित् विष मिलते ही सारा दूधपाक विषरूप हो जाता है और खानेमें काम नहीं आता उसी प्रकार मात्र परलक्षी ज्ञान करके उसके साथ शरीरकी तथा रागकी क्रिया मिलाना वह एकांत मिथ्यात्व है।

जीव शरीरकी क्रिया कर ही नहीं सकता है और अपूर्ण दशा में राग होता है उस रागके करनेका अभिप्राय भी ज्ञानीको नहीं है। शरीर और रागका ज्ञाता है वैसा आत्माका स्वरूप है

इस प्रकार समझना वह समझपूर्वककी क्रिया है। समझपूर्वक की क्रिया कहते ही शरीरकी तथा रागकी क्रियाका निषेध हो जाता है। आत्मा बाहरके किसी लिंगसे ज्ञात नहीं होता ऐसा वह एक ज्ञेय पदार्थ है। उसका वैसा ज्ञान करना वही सच्ची क्रिया है।

यहां तो इस प्रकार कहना है कि अनुमान ज्ञान मात्रसे आत्मा ज्ञात हो ऐसा नहीं है। इससे निम्न न्याय फलित होते हैं—

प्रत्यक्ष-परोक्ष ज्ञानके न्याय

१. अनुमान ज्ञानमात्रसे आत्मा ज्ञात होने योग्य हो तो प्रत्यक्ष ज्ञान और उसका विषय (का अस्तित्व) नहीं रहता। परन्तु उस प्रकार नहीं बन सकता।

२. केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है और उसमें आत्मा तथा सर्वपदार्थ साक्षात् ज्ञात होते हैं। परन्तु वह वर्तमानमें छद्मस्थको पूर्ण प्रगट नहीं है। जो वह वर्तमान में पूर्ण प्रगट हो तो संपूर्ण आनन्द प्रगट होना चाहिये।

३. साधकको स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ज्ञान होता है और उसका अनुमान ज्ञान प्रमाण है क्योंकि स्वसंवेदन विनाका मात्र अनुमान ज्ञान प्रमाण नहीं हो सकता अतः साधकदशामें आंशिक प्रत्यक्ष और परोक्ष दोनों साथ रहते हैं।

४. साधक दशामें यदि मात्र परोक्ष ही माना जावे तो प्रत्यक्ष कभी नहीं होगा परन्तु वैसा नहीं होता। अतः स्वसवेदन

अंश-प्रत्यक्ष वहां अस्तित्व है वही बढ़कर संपूर्ण प्रत्यक्ष केवलज्ञान होता है।

५. साधक दशामें अंश प्रत्यक्ष स्वसंवेदन ज्ञान है उसके क्रमक्रमसे बढ़ने पर परोक्षका अभाव होता जाता है और पूर्ण प्रत्यक्ष होने पर परोक्षका सर्वथा अभाव होता है।

६. अनुमान ज्ञान अकेला हो ही नहीं सकता क्योंकि अनुमान ज्ञान अकेला हो तो वह त्रिकाल रहे और प्रत्यक्ष होनेका प्रसंग ही नहीं प्राप्त हो।

७. संपूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान अकेला हो सकता है क्योंकि वहां परोक्ष का सर्वथा अभाव होता है।

स्वसंवेदन बिनाका मात्र अनुमान वह ज्ञान ही नहीं है। अतः केवल अनुमान ज्ञान मात्र से आत्मा ज्ञात होने योग्य नहीं है उसी प्रकार केवल अनुमानमात्रसे आत्मा स्व अथवा परको नहीं जानता है। इस प्रमाण से आत्मा अनुमाता मात्र नहीं है।

मात्र अनुमानसे जाननेका ज्ञान का स्वभाव नहीं है उसी प्रकार मात्र अनुमानसे ज्ञात हो ऐसा ज्ञेयका स्वभाव नहीं है। इस प्रकार आत्मा केवल अनुमानसे ही जाने ऐसा वह ज्ञेय पदार्थ नहीं है। इस प्रकार स्वज्ञेयका यथार्थ स्वरूप जानना वह धर्मका कारण है।

महामुनि जंगलमें निवास करते थे। एक 'अलिंग ग्रहण' में से बीस वचन प्रगट किये हैं उनमें शुद्ध आत्म प्रगट होगा, ऐसा लगता है। अत्यंत अद्भुत बात की है। लौकिकमें कोई तैयार करके

लड्डू देवे और जिसको वे भी खाना नहीं आता हो वह मूर्ख है। उसी प्रकार यहां अद्‌भुत रीतिसे आत्मा प्रगट हो ऐसा माल प्रस्तुत किया है तो भी जो जीव उसका विचार करके, श्रद्धा करके, स्वरूपानन्दका भोग न करे वह मूर्ख है।
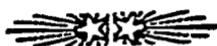
[माह वद ५ सोमवार]

(१) आत्मा अतीन्द्रिय ज्ञान मय है इस प्रकार तू जान !

यह आत्मा शरीर आदिसे पर है, वह क्या है? शरीर इत्यादि परज्ञेय हैं और आत्मा स्वज्ञेय है। स्वयंको स्वयं द्वारा जानने पर आत्मा स्वरूप से ज्ञात होता है और पर पदार्थ पर रूपसे ज्ञात होते हैं। आत्मा वाह्य लिंगसे ज्ञात होने योग्य नहीं है इस प्रकार 'तू जान'। यहां आचार्य भगवान आदेश करते हैं। यह ज्ञेयरूप आत्मा ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द, अस्तित्व, विभुत्व, प्रभुत्व आदि अनंत अनंत शक्तियोंका पिंड है और अलिंग ग्रहण है इसप्रकार 'तू जान'। आत्माको इन्द्रियोसे जानना नहीं होता इस प्रकार 'तू जान'। आत्मा अतीन्द्रिय है अर्थात् इन्द्रिय तथा मनके अवलम्बन रहित है अतः इंद्रियों द्वारा नहीं जानता है इस प्रकार तू जान।

श्री गुरु शिष्यको कहते हैं कि 'तू जान' तो उससे निर्णय होता है कि आत्मा जान सकता है। यदि शिष्य आत्माको जान

सके, ऐसा न होता तो श्री गुरु 'तू जान' ऐसा नहीं कहते। 'तू जान' ऐसा कहते ही शिष्य जान सकता है ऐसा आत्मा है, इस प्रकार निर्णय होता है।

आत्मा में जिनका अभाव है उन इंद्रियों द्वारा किस प्रकार जाने ?

यह आत्मा सच्चिदानंद स्वरूप है। वह इन्द्रियों से नहीं जानता है इस प्रकार तू जान। आत्मामें इन्द्रियोंका अभाव है। जिस पदार्थमें जिसका अभाव हो उससे वह काम करे ऐसा नहीं बन सकता। भगवान आत्मा में इंद्रियोंका अभाव है और अभाव द्वारा आत्माको जाने तो ऐसा बने जैसा कि किसी को खरगोशके सींगोंसे दुःख उत्पन्न हो। जगतमें खरगोशके सींग हैं ही नहीं, तो फिर वे सुख-दुःखके कारण कैसे हो सकते हैं ? हो ही नहीं सकते हैं। उसी प्रकार आत्मामें इन्द्रियोंका अभाव है तो उन अभाव रूप इन्द्रियों द्वारा आत्मा जाने ऐसा कैसे बन सकता है ? बन ही नहीं सकता है। अतः आत्मा अतीन्द्रिय स्वभाव वाला है इस प्रकार तू जान। इसका नाम सम्यग्दर्शन और धर्म है।

(२) आत्मा इन्द्रिय प्रत्यक्षका विषय नहीं है ऐसा तू जान।

आत्मा इंद्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होता ऐसा तू जान। इंद्रियां उसमें हैं ही नहीं। जो वस्तु जिसमें न हो उससे वह ज्ञात हो ऐसा कभी नहीं बन सकता। आत्मामें इन्द्रियां ही नहीं हैं अतः वह इंद्रिय प्रत्यक्षका विषय नहीं है। वह तो स्वयं ज्ञात होने योग्य है, इस प्रकार तू जान।

(३) आत्मा इंद्रिय प्रत्यक्षपूर्वक अनुमानका विषय नहीं है ऐसा तू जान ।

शरीर हिलता है-चलता है, वाणी बोली जाती है इसलिये आत्मा है इस प्रकार इन्द्रियके प्रत्यक्ष पूर्वक अनुमान करने योग्य आत्मा नहीं है। आत्मामें इन्द्रियां ही नहीं हैं अतः इन्द्रिय प्रत्यक्ष अनुमानसे आत्मा ज्ञात नहीं हो सकता है इस प्रकार तू जान।

जिस प्रकार धूम्रसे अग्निका अनुमान होता है उसी प्रकार इन्द्रिय गम्य किसी भी चिह्नसे आत्मा ज्ञात नहीं होता परन्तु स्व-संवेदन ज्ञानसे ज्ञात होता है इस प्रकार तू जान।

"तू जान" में से ऐसा अर्थ निर्णीत होता है कि "शिष्य ऐसा है कि आत्माको जान सके। हीरोंके व्यापारीको हीरोंकी दुकान प्रारंभ करते समय ध्यानमें है कि हीरोंके ग्राहक संसारमें हैं। वे ग्राहक हमारे पास हीरे लेने आयेंगे ऐसा उसे विश्वास है। परन्तु 'मैं हीरोंकी दुकान तो करता हूं किन्तु कोई ग्राहक हीरे लेने नहीं आवे तो' ? ऐसी शंका उसे नहीं होती। इसी प्रकार आचार्य भगवानने 'तू जान' इस प्रकार कहा है तो उनको विश्वास है कि मैं कहता हूँ वैसे आत्माको जानने वाले जीव हैं ही। भविष्यमें होनेवाले जीव 'जैसा आत्मा मैं कहता हूँ वैसा नहीं जानेंगे तो ? ऐसी उनको शंका ही होती नहीं। यह बात बहुत सूक्ष्म है और कठिन है इसलिये ज्ञात नहीं होगी, ऐसा नहीं है। अतः तू जान सकता ही है ऐसा तू विश्वास कर।

आत्मा स्वतत्त्व है वह परतत्त्व द्वारा नहीं जानता है, परतत्त्व द्वारा ज्ञात नहीं होता है, उसी प्रकार परतत्त्वके अनुमान द्वारा भी ज्ञात नहीं होता परन्तु स्वतत्त्वसे ही जानता है और ज्ञात होता है इस प्रकार तू जान।

(४) केवल अनुमानसे ही ज्ञात हो वैसा आत्मा नहीं है इस प्रकार तू जान।

अन्य जीव मात्र अनुमान करे और आत्मा ज्ञात हो-ऐसा आत्मा नहीं है। अन्य (जीव) केवल अनुमान ज्ञानसे निर्णय करे कि यह आत्मा ऐसा है तो वह आत्माका ज्ञान सच्चा नहीं है। 'राग रहित ज्ञानानंद शुद्ध चैतन्य हूँ,' उसके भान द्वारा-स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा आत्मा ज्ञात हो ऐसा है।

पंच परमेष्ठी भगवान मात्र अनुमानसे ज्ञात नहीं होते।

अन्य जीव मात्र अनुमान करते हैं और कहते हैं कि ये वीतरागदेव हैं, ये निग्रंथ गुरु हैं तो उस प्रकारसे परीक्षा नहीं हो सकती है इस प्रकार तू जान। सर्वज्ञ देवाधिदेव, अर्हंत तथा सिद्ध और आचार्य, उपाध्याय, मुनि आदिके आत्माको जानना हो तो मात्र अनुमान द्वारा ज्ञात हो सके ऐसा वह आत्मा ही नहीं है।

हीरेकी दुकान पर दो पैसे लेकर जावे तो हीरा-माणिक नहीं मिलता और कोई भिखारी भीख मांगे तो उसे लड्डुओंका चूरा मिलता है परन्तु मिठाईका पूरा लड्डू नहीं मिलता है। पूरा लड्डू मांगनेका उसका साहस भी नहीं होता है उसी प्रकार घरकी

ऋद्धि, सिद्धि, हीरा आदि हमें दिखाओ ऐसे कहनेका साहस भी उसमें नहीं होता है। उसी प्रकार मात्र अनुमान ज्ञान भिखारी जैसा है, उसके द्वारा हीरे सदृश पंचपरमेष्ठीके आत्माओंकी परीक्षा नहीं हो सकती है। जिस प्रकार भिखारी में 'हीरा दिखाओ' ऐसा कहने का साहस ही नहीं है उसी प्रकार अनुमान ज्ञानमें पंचपरमेष्ठीके आत्माकी परीक्षा करे, ऐसी शक्ति ही नहीं है। अपना आत्मा शुद्ध स्वभावी है उसकी श्रद्धा, ज्ञान तथा राग रहित आंशिक स्वसंवेदन जिस जीवमें नहीं है वह जीव मात्र अनुमान ज्ञानसे पंच परमेष्ठियोंके आत्माओंको नहीं जान सकता। स्वसंवेदन ज्ञान रहित मिथ्यादृष्टि भले ही शास्त्रका बहुत बड़ा ज्ञाता हो और उस ज्ञानसे मात्र अनुमान करे कि अर्हंत ऐसा होना चाहिये अथवा मुनि ऐसा होना चाहिये तो उसका वह सर्व अनुमानज्ञान ज्ञान ही नहीं है। उसके द्वारा पंच परमेष्ठियों की पहिचान हो सके ऐसा वह आत्मा ही नहीं है इसप्रकार तू जान।

पंच परमेष्ठी भगवान स्वसंवेदन ज्ञानसे ज्ञात होते हैं।

मात्र अनुमानसे पांच परमेष्ठी ज्ञात नहीं होते तो वह आत्मा किस ज्ञानसे ज्ञात होने योग्य है? तो कहते हैं कि भाई! तुझे पंच परमेष्ठीको जानना हो तो प्रथम तो अपने में स्वसंवेदन ज्ञान प्रगट कर तो उस ज्ञानसे वे ज्ञात होंगे। आत्मा शरीर तथा इन्द्रिय रहित है, राग रहित है, पर पदार्थ तथा मनके अवलंबनसे रहित है ऐसे अपने आत्माकी श्रद्धा और ज्ञान कर।

१. इस प्रकारके स्वसंवेदन सहितके ज्ञानको विस्तृत करके अनुमान कर कि मेरे ज्ञानका आंशिक रूपसे प्रत्यक्ष उघाड़ है तो वह अंश प्रत्यक्ष बढ़कर एक समयमें तीन काल तीन लोकको जानने योग्य संपूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान हो सकेगा। तुझे ऐसा विश्वास हुआ तो उससे अनुमान कर कि ऐसे संपूर्ण ज्ञानको प्राप्त अर्हंत और सिद्ध होने चाहिये और उनकी सर्वज्ञ दशा संपूर्ण राग रहित और मनके अवलंबन रहित होनी चाहिये। और वह सर्वज्ञ दशा एक समयमें तीन काल तीन लोकको जानने रूप होनी चाहिये।

२ तथा मुझे जिस प्रकार आंशिक स्वसंवेदन ज्ञान प्रगट हुआ है उसी प्रकारका राग रहित शुद्ध, निरावलंबी तत्त्व आत्मा है, उसका आश्रय करके अपनेमें भी स्वसंवेदन ज्ञान आंशिक रूपसे प्रगट करने वाले अन्य साधक जीव भी मेरे सदृश होने चाहिये। जो आंशिक रूपसे साधन कर रहे हैं और तत्पश्चात् परिपूर्ण दशा प्रगट करेंगे वे साधक जीव आचार्य, उपाध्याय और मुनि हैं।

इस प्रकार आत्माके स्वसंवेदन ज्ञानको विस्तृत करके निर्णय करे कि पंचपरमेष्ठियोंमें पूर्ण सर्वज्ञ कैसे होते हैं और अपूर्ण ज्ञानी कैसे होते हैं तो उसका निर्णय सच्चा है और उस ज्ञानमें पंच परमेष्ठी ज्ञात होते हैं। मिथ्यादृष्टिके स्वसंवेदन रहित मात्र अनुमानज्ञानमें पंचपरमेष्ठियोंके आत्मा ज्ञात नहीं होते। अतः मात्र अनुमान ज्ञानको लिंग रूपसे कहकर उस लिंगसे अन्य आत्माओंका ग्रहण नहीं हो सकता (ज्ञान नहीं हो सकता) ऐसा अलिंग ग्रहण का अर्थ, हे शिष्य ! तू जान।

स्वसंवेदन रहित मात्र अनुमान प्रमाणज्ञान नहीं है बल्कि मिथ्याज्ञान है ।

१. एक पदार्थमें वर्तमान पर्यायमें अपनी योग्यता के कारण कार्य होता है तब अन्य संयोगी वस्तुको निमित्त कहते हैं । उपादान में कार्य नहीं हो तो अन्य वस्तुको निमित्त भी नहीं कहते हैं । अर्थात् उपादानमें कार्य हुए बिना अन्य संयोगी वस्तुमें निमित्तपनेका आरोप ही नहीं आता है ।

२. जीव अपने शुद्धस्वभावके आश्रयसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी निश्चय पर्याय प्रगट करे तो देव-शास्त्र-गुरु प्रतिके शुभ रागको व्यवहारका आरोप दिया जाता है । अपनेमें निश्चय निर्मल पर्याय प्रगट न करे तो पूर्वके रागको व्यवहार नाम भी नहीं दे सकते हैं, अर्थात् निश्चय बिना मात्र व्यवहार होता ही नहीं है ।

इस न्यायसे

३. जीव अपने शुद्ध स्वभावके आश्रयसे स्वसंवेदन ज्ञान प्रगट करे तो उस स्वसंवेदन सहितके अनुमानज्ञानको अनुमान ज्ञान प्रमाण कहते हैं । अपनेमें स्वसंवेदन ज्ञान प्रगट न करे तो मात्र अनुमान प्रमाणज्ञान नहीं कहलाता है बल्कि वह मिथ्याज्ञान कहलाता है ।

भाव नमस्कारका स्वरूप और उसका फल

पंचपरमेष्ठीका आत्मा तेरे मात्र अनुमान ज्ञानसे ज्ञात नहीं होता है, इस प्रकार तू जान । तुझे पंच परमेष्ठीको जानना हो और उन्हें भाव नमस्कार करना हो तो जिस प्रकार मुनि सम्यक्श्रद्धा-

ज्ञान पूर्वक स्थिरतामें आगे बढ़ रहे हैं और अर्हंत, सिद्ध पूर्ण परमात्मा हो गये हैं उसी प्रकार स्वयंमें श्रद्धा-ज्ञान करके स्वसंवेदन प्रगट कर, तो उस (स्वसंवेदन) ज्ञान पूर्वक अनुमान कर सकेगा कि सर्वज्ञ भगवान पूर्ण दशाको प्राप्त हुए हैं। पुण्य, व्यवहार और विकल्पकी एकता रहित और ज्ञातादृष्टा शुद्ध स्वभावकी एकता सहित ज्ञान, यही ज्ञान यथार्थ है इस प्रकार तू जान। ऐसा स्वसंवेदन ज्ञान होनेके पश्चात् यथार्थ अनुमान होता है कि सर्वज्ञ पूर्णपदको प्राप्त हुए, साधक आंशिक रूपसे साधन कर रहे हैं और आगे बढ़कर पूर्णपदको प्राप्त करेंगे। इस प्रकार पंच परमेष्ठियोंका, जोकि पर आत्मायें हैं, उनका ऐसा प्रमेय-धर्म है इस प्रकार तू जान।

पंच परमेष्ठियोंका प्रमेय-धर्म ऐसा है इस प्रकार जो जीव जानता है उसने पंच परमेष्ठीको यथार्थ रूपसे पहचाना है और उसने ही सच्चा भाव नमस्कार किया है।

कोई कहता है कि इतना सब विस्तार जाननेमें हमारी मानी हुई सब क्रिया समाप्त हो जाती है?

समाधान—भाई! तुझे शांति और सुख चाहिये न? धर्म करना है न? धर्म कहो, शांति कहो, सुख कहो—ये सब एक ही हैं। वह शांति सत्य वस्तुकी शरणसे मिलती है, परन्तु असत्य वस्तुकी शरणसे नहीं मिलती है। अतः वस्तु जिस प्रकार है उसी प्रकार सत्य जान और स्वसंवेदन ज्ञान द्वारा अपने शुद्ध आत्माका अनुभव कर। वही शांतिका कारण है और वही बढ़ते-बढ़ते परिपूर्ण केवलज्ञान होकर सम्पूर्ण सुख और शांति प्रगट होगी। यही धार्मिक क्रिया है।

(५) आत्मा मात्र अनुमान करनेवाला नहीं है इस प्रकार तू जान।

चौथे वचनमें कहा था कि अन्य जीव तेरे आत्माको अथवा पंच परमेष्ठीके आत्माको मात्र अनुमान द्वारा जाननेका प्रयत्न करें तो वे ज्ञात नहीं होंगे। अब यह पांचवें वचनमें कहते हैं कि तू स्वयं कैसा है? तू केवल अनुमान करने वाला ही नहीं है। आत्मा मात्र अनुमान करने वाला हो तो अनुमान रहित प्रत्यक्ष केवलज्ञान प्रगट करनेका अवसर नहीं आयेगा। जिस प्रकार जो पुण्यपाप भावका ही मात्र कर्त्ता और उसीको सर्वस्व माननेवाला है उसे आत्मा नहीं कहते उसी प्रकार मात्र अनुमान ज्ञान करने वालेको आत्मा ही नहीं कहते। इससे निम्न न्याय निकलते हैं—

१. यदि आत्माकी वर्तमान पर्यायमें प्रगट केवल प्रत्यक्ष ज्ञान हो तो वर्तमानमें छद्मस्थको जो ज्ञानकी हीनता दिखाई देती है वह नहीं होनी चाहिये परन्तु वर्तमानमें ज्ञानकी हीनता दिखाई देती है अतः छद्मस्थको वर्तमान पर्यायमें केवल प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं है ऐसा निर्णय होता है। अतः कोई ऐसी दशा होनी चाहिये जिसमें आंशिक प्रत्यक्ष और आंशिक परोक्ष ज्ञान हो सकता हो, वह साधक दशा है।

२. तथा साधक दशामें आंशिक प्रत्यक्ष और आंशिक परोक्ष ज्ञान न हो तो आंशिक प्रत्यक्षज्ञान बढ़कर कभी भी संपूर्ण प्रत्यक्ष नहीं हो सकता है और परोक्षका अभाव नहीं हो सकता है अतः साधक दशामें आंशिक प्रत्यक्षज्ञान है, ऐसा निर्णय होता है।

३. जिस प्रकार साधक दशामें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी निर्मल पर्याय आंशिक प्रगट हैं, उस समय देव-शास्त्र-गुरु आदिके प्रति राग रूपी व्यवहार सहचर होता है।

इस न्यायसे (उसी प्रकार)

साधक दशामें अपने स्वभावके श्रद्धा-ज्ञान सहित स्व संवेदन आंशिक प्रत्यक्षज्ञान पर्यायमें प्रगट होता है उस समय अनुमान ज्ञान भी आंशिक परोक्ष उस ही पर्यायमें सहवर्ती होता है।

४. तथा जिस प्रकार विशेष पुरुषार्थ होने पर दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी सम्पूर्ण निर्मल पर्याय प्रगट होती है तब देवशास्त्र गुरुके प्रतिके शुभरागरूपी व्यवहारका सर्वथा अभाव होता है और निश्चय मात्र रहता है।

इस न्यायसे (उसी प्रकार)

साधकदशामें ज्ञान स्वभावी आत्मामें सम्पूर्ण एकाग्रता होने पर सम्पूर्ण प्रत्यक्ष केवलज्ञान प्रगट होता है उस समय परोक्ष ज्ञानका सर्वथा अभाव होता है, और सकल प्रत्यक्ष केवलज्ञान मात्र रहता है।

इस वचनमें अलिंग ग्रहणका अर्थ—अ = नहीं, लिंग = केवल अनुमान मात्र, ग्रहण = जानना। तू केवल अनुमाता मात्र नहीं है। ऊपर कहे अनुसार अनुमान मात्र हो तो कभी भी केवलज्ञान नहीं होगा अतः साधक दशामें स्वसंवेदन सहित अनुमान है। तेरा ज्ञान स्व अथवा परको जाननेमें स्वसंवेदन सहित कार्य न करे तो तेरा

जानना यथार्थ नहीं है। तथा तेरा आत्मा ज्ञाताके अतिरिक्त ज्ञेय भी है। वह मात्र अनुमान करने वाला नहीं है, परन्तु समस्त जगतके स्व तथा पर, जड़ तथा चेतन सर्व पदार्थों को स्वसंवेदन ज्ञान पूर्वक जानता है ऐसा उस ज्ञेय आत्माका स्वभाव है, इस प्रकार तू जान।

"तू जान" का रहस्य

श्री कुन्दकुन्दाचार्य भगवानने उनकी गाथामें "जाण" ऐसा कहा है। तत्पश्चात् श्री अमृतचन्द्राचार्यने इतना विस्तार करके 'अलिगग्रहण' के बीस वचनोंसे भिन्न भिन्न भाव समझाकर आत्मा-को ऐसा जान—इस प्रकार कहा। वे पंचमकाल के मुनि हैं। पंचमकाल कठिन है अतः ये शब्द चौथेकालके जीवोंके लिये होंगे? नहीं। यह पाठ तथा टीका पंचम कालके जीव नहीं समझ सकते होते तो "तू जान" ऐसा आदेश कैसे करते? भाई! पंचमकालके जीवोंके लिये ही टीका की है और जीव समझ ही सकेंगे ऐसा उन्हें विश्वास है। सहज योग बन गया है। ज्ञानी पुरुष "तू जान" कह कर आदेश दें तब उनके रहस्यके ज्ञाता न हों, ऐसा नहीं बन सकता है। समझाने वाले और समझने वाले दोनोंमें परस्पर निमित्त नैमित्तिक संबन्ध है। आचार्यने कहा है कि 'तू जान' अतः मैं मेरे आत्माको जान सकता हूं, इसमें कोई काल बाधा नहीं करता है—इस प्रकार विचार कर आत्माका स्वरूप यथार्थ समझनेके लिये पुरुषार्थ करना चाहिये।

जिस प्रकार पुण्य-पापसे लाभ होता है ऐसा मानने वाला जीव आत्माको नहीं जानता है उसी प्रकार इन्द्रियोंसे ज्ञान होता है

और अनुमाता मात्र आत्मा है उस प्रकार मानने वाला जीव भी आत्माको नहीं जानता है। जीवके स्वरूपका यथार्थ ज्ञान करे तो धर्म हो।

ये पांच वचन पूर्ण हुए। इनमें नास्तिसे कथन किया है। अब छठे वचनमें अस्तिसे कथन करते हैं।

(६) आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है इस प्रकार तू जान।

आत्मा किसी बाह्य चिह्न अथवा अनुमान आदि उपरोक्त पांच लिंगों द्वारा ज्ञात नहीं होता, परन्तु स्वभाव द्वारा ज्ञात होता है। आत्मा स्वभाव द्वारा ज्ञात होता है-ऐसा कहते ही वह परोक्ष अनुमान मात्रसे ज्ञात होने योग्य नहीं है उसी प्रकार इन्द्रियों और मनके अवलम्बनसे भी ज्ञात होने योग्य नहीं है ऐसा नास्तिका कथन भी उसमें गर्भित है। यहां तो अस्तिसे यह वचन कहा है।

परोक्षता होने पर आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है इस प्रकार क्यों कहा ?

यहां तो साधक दशाकी बात है। केवलीको समझना शेष नहीं रहता क्योंकि वह तो सम्पूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञाता हो गये हैं। तब यहां इस वचनमें इस प्रकार कहा है कि 'प्रत्यक्ष ज्ञाता है ऐसे भाव की प्राप्ति होती है' उसका क्या अर्थ है ? प्रत्यक्ष ज्ञाता तो केवली होता है फिर भी यहां प्रत्यक्ष ज्ञाता कहा है क्योंकि साधक जीव अपने आत्माको प्रत्यक्ष ज्ञाता मानता है। साधकको परोक्षता आंशिक है उसकी यहां गौणता है। प्रत्यक्षकी मुख्यता है। जो

अपने आत्माको राग रहित तथा मनके अवलम्बन रहित, प्रत्यक्ष ज्ञाता नहीं मानता है उसको धर्म कभी भी नहीं होता है।

यहां कहा है कि आत्मा इन्द्रियोंसे स्व-परको नहीं जानता है, आत्मा इन्द्रियों द्वारा ज्ञात नहीं होता है, आत्मा इन्द्रियगम्य चिह्नोंसे ज्ञात नहीं होता है, आत्मा केवल अनुमान ज्ञानसे ज्ञात नहीं होता है और आत्मा केवल अनुमान ज्ञानसे स्व-परको नहीं जानता है। इन पांच लिंगों द्वारा आत्मा ज्ञात नहीं होता है अतः आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है ऐसे भावकी प्राप्ति होती है।

आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है, ऐसे श्रद्धा-ज्ञानका फल केवलज्ञान

जिस प्रकार कोई जीव रागको अपना स्वरूप माने तो कभी भी राग रहित नहीं हो सकता है, परन्तु राग होने पर भी उसी समय स्वयंका त्रिकाली स्वरूप राग रहित है इस प्रकार यदि श्रद्धा-ज्ञान करता है तो आंशिक वीतरागता प्रगट होती है और तत्पश्चात् स्थिरता बढ़ते बढ़ते परिपूर्ण वीतराग दशा प्रगट होती है।

उस न्यायसे

परोक्ष ज्ञान आत्माका स्वभाव हो तो परोक्ष रहित कभी भी नहीं हो सकता है क्योंकि जो वस्तु सदाकाल अपनी हो वह कभी उससे पृथक् नहीं हो सकती है। परन्तु परोक्ष ज्ञानका अभाव करके संपूर्ण प्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट करके अनेक जीव सर्वज्ञ हो गये हैं अतः परोक्षज्ञान आत्माका त्रिकाली स्वभाव नहीं है ऐसा निर्णय होता है। अतः उपरोक्त पांच लिंगसे आत्मा ज्ञात हो ऐसा नहीं है। तो आत्मा कैसा है ? आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। वर्तमानमें परोक्ष ज्ञान

होने पर भी मेरा स्वभाव प्रत्यक्ष ज्ञाता है इस प्रकार श्रद्धा-ज्ञान करता है तो स्वयंमें आंशिक प्रत्यक्ष ज्ञान प्रगट होता है और विशेष बढ़कर केवलज्ञान प्राप्त करता है।

क्रियाका स्वरूप

प्रश्न—इतना समझनेके पश्चात् प्रौषध, प्रतिक्रमण आदिकी क्रिया करना तो यथार्थ है न ?

उत्तर—भाई ! शरीरकी क्रिया तो आत्मा कभी नहीं कर सकता है। भक्ति आदिका शुभभाव पुण्यास्रव है, वह विकारी क्रिया है, विभावभाव है। जो स्वभावसे विरुद्ध भाव है वह स्वभावको किस प्रकार सहायता करे ? नहीं ही करे। अशुभसे बचनेके लिये शुभभाव आता है परन्तु उससे धर्म मानना अथवा धर्ममें सहायक मानना मिथ्या है। आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता दृष्टा है ऐसा प्रथम श्रद्धा-ज्ञान करना वह प्रथम धार्मिक क्रिया है और तत्पश्चात् उसमें एकाग्रता करके प्रत्यक्ष केवलज्ञान प्रगट करना वह मोक्षकी क्रिया है।

सच्ची श्रद्धाका फलरूपसे केवलज्ञान अकेला रहता है।

यहां तो प्रत्यक्ष ज्ञातास्वभावकी श्रद्धा करनेकी बात है। तथा जिस प्रकार साधक दशा पूर्ण होने पर केवल निश्चय रहता है और व्यवहारका अर्थात् रागका अभाव होता है, परन्तु केवल व्यवहार रहता हो ऐसा कभी नहीं बनता है; उसी प्रकार केवल अनुमान ज्ञान रहता हो ऐसा कभी नहीं बनता है, परन्तु आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है उसमें सम्पूर्ण एकाग्र होने पर सर्व प्रत्यक्ष ज्ञान

प्रगट होता है और वह सदा अकेला रहता है ऐसा बन सकता है परन्तु परोक्ष ज्ञानका तो सर्वथा अभाव हो जाता है। इस प्रकार आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। उस अर्थका भाव जो जीव स्वयमें उतारता है (स्थापित करता है) वह जीव पर्यायमें प्रत्यक्ष ज्ञाता हो सकता है।

प्रश्न—ऐसे भावकी प्राप्ति किसको होती है ? भगवानको ?

उत्तर—भगवानको तो प्राप्ति हो चुकी है; उनको कुछ करना शेष नहीं रहता है। जिसको प्रत्यक्ष ज्ञान आंशिक भी नहीं है वह तो मिथ्यादृष्टि है। उसे यहां आत्मा ही नहीं गिना है। उसे तो पता ही नहीं है कि मुझमें ऐसी ऋद्धियां भरी पड़ी हैं। परन्तु साधक जीव विचार करता है कि मेरा आत्मा राग रहित स्वसंवेदन प्रत्यक्ष ज्ञाता है, देह, मन, वाणी, देव-शास्त्र-गुरु तथा शुभराग आदि किसीकी भी अपेक्षा नहीं रखता है, मात्र अपने आत्माकी ही अपेक्षा रखता है। उसके ज्ञानके लिये किन्ही बाह्य लिंगोंकी आवश्यकता नहीं है। मात्र प्रत्यक्ष ज्ञाता स्वरूप है इस प्रकार श्रद्धा-ज्ञान करके धर्मदशाको प्राप्त करता है। इस प्रकार धर्मात्मा जीव, "अलिंगग्रहण" शब्द वाचक है, उसमेंसे वाच्य-भाव इस प्रकार निकालता है।

आचार्य भगवान भी शिष्यको यही भाव कहते हैं कि हे शिष्य ! तेरा आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है ऐसा तेरा स्वज्ञेय है इसप्रकार तूं जान।

(७) उपयोगको ज्ञेय पदार्थोंका अवलंबन नहीं है इस प्रकार तू जान।

पहले पांच वचनोंमें द्रव्यका (आत्मा का) नास्तिसे कथन कियां है। आत्मा किसी बाह्य चिह्नसे ज्ञात हो ऐसा नहीं है इस प्रकार नास्तिसे आत्मद्रव्यका कथन किया। छठवें वचनमें आत्म द्रव्यकी अस्तिसे बात कही थी अब सातवें वचनमें आत्माके ज्ञानगुण की पर्याय-उपयोगका कथन करते हैं।

यहां लिंगका अर्थ उपयोग कहा है। जिसको लिंग द्वारा अर्थात् उपयोग नामक लक्षण द्वारा ग्रहण अर्थात् ज्ञेय पदार्थोंका अवलम्बन नहीं है वह अलिंग ग्रहण है। इस प्रकार आत्माको बाह्य पदार्थोंके अवलंबन वाला ज्ञान नहीं है ऐसे अर्थ की प्राप्ति होती है।

कोई प्रश्न करता है कि देव-शास्त्र-गुरु आदि ज्ञेयोंका अवलंबन नहीं है तो मंदिरों तथा पंचकल्याणक आदि किसलिये कराया ?

धर्मात्मा जीव स्वभावका अवलंबन लेता है और स्वभावका बहुमान करता है।

समाधान—साधक जीवको अशुभसे बचनेके लिये शुभराग आता है उस समय किस प्रकारके निमित्त होते हैं उनका ज्ञान कराया है परन्तु इस कारण उनका ज्ञान देव, गुरु अथवा मंदिरोंका अवलंबन करता है ऐसा इसका अर्थ नहीं है। देव-शास्त्र-गुरुसे

ज्ञान नहीं होता है क्योंकि वे तो पर ज्ञेय हैं अर्थात् धर्मात्मा जीव उनका अवलंबन ही नहीं करता है।

तथा वह देव, शास्त्र, गुरुको निश्चयसे वंदन ही नहीं करता है परन्तु अपने स्वभावकी वंदना करता है। विकल्प उठता है तब देव, गुरुकी ओर लक्ष जाता है तो भी उस समय भी अपने स्वभावके बहुमानसे च्युत नहीं होता है।

इस समय सत्की बात दुर्लभ हो गयी है। सत्य बात बाहर प्रगट हो तो समझनेवाले और विरोध करनेवाले दोनों होते हैं। इस समयकी क्या बात करें, परन्तु भगवान् ऋषभदेवकी वाणी खिरनेसे पहले युगलियोंको एक देवगति ही होती थी। जीव भी ऐसे ही परिणाम संयुक्त थे, परन्तु जब ऋषभदेव भगवानकी वाणी खिरी और कानोंमें पड़ी तभी चारों गतियां प्रारम्भ हो गईं। २४ दंडकमें और सिद्धगतिमें जाने वाले हुए। कोई सिद्धगतिमें जाने वाले हुए, कोई साधक हुए और कोई नरक-निगोदमें जाने वाले भी हुए। वाणीके कारण उस प्रकार नहीं हुआ। परन्तु सबकी अपनी अपनी योग्यता अनुसार हुआ। भगवानके समय ऐसा हुआ तो अभी ऐसा हो तो उसमें नवीनता नहीं है।

उपयोग परका आलंबन नहीं लेता है।

यहां उपयोगका कथन होता है। उपयोग चैतन्यका लक्षण अथवा चिह्न है। उपयोग आत्माका अवलंबन करता है। आत्म द्रव्य भी ज्ञेय है, गुण ज्ञेय है और पर्याय भी ज्ञेय है। उपयोग भी ज्ञेय है। उपयोगका स्वभाव जानने देखनेका है वह पर ज्ञेयोंका अवलंबन

नहीं करता है क्योंकि पर ज्ञेयोंमें उपयोग नहीं है। जो जिसमें नहीं होता है उसका अवलंबन वह किस प्रकार लेगा ? पर ज्ञेयोंमें जानने-देखनेका स्वभाव अर्थात् उपयोग नहीं है अतः परका अवलंबन लेवे ऐसा उपयोगका स्वभाव नहीं है।

यहां कोई कहता है कि हम तो व्रतधारी हैं, प्रतिमाधारी हैं, उपदेशक हैं, अतः हमें यह सब सुननेकी आवश्यकता प्रतीत नहीं होती है क्योंकि हमारी जो मान्यता है उसमें हमें भूल नहीं दिखाई देती है।

मेरेमें भूल नहीं है ऐसे माननेवाला कभी भी भूल रहित नहीं होता है।

समाधान—मेरेमें हीनता है इस प्रकार जो जानता है उसे हीनता दूर करके अधिक होनेका प्रसंग बन सकता है परन्तु हीनता ही नहीं है इस प्रकार कहता है तो हीनता दूर करनेका प्रश्न ही नहीं है। संसारी जीवोंको, जब तक वीतराग न हो, तब तक भूल होती है। भूल स्वयंमें है, इस प्रकार स्वीकार करे तो भूल दूर कर सकता है परन्तु मुझमें भूल ही नहीं है, मैं तो भूल रहित हूं, इस प्रकार बाह्य क्रियाकाण्डके अभिमानमें माने तो भूल रहित होनेका प्रसंग ही नहीं बनता है अर्थात् उसका संसार दूर नहीं होता है अतः जीवको स्वयंकी भूल कहां है ? उसे जानकर, उसे स्वीकार करके, उसके दूर करनेका प्रयत्न करना चाहिये।

यहां उपयोगका लक्षण जानना-देखना है और वह लक्षण लक्ष्यका अर्थात् आत्माका ज्ञान कराता है इस प्रकार कहा है।

कोई प्रश्न करता है कि आत्मामें अनादिका परकी ओरका उपयोग है, उसका कब सुधार होगा ? शुभरागके अवलंबन अथवा देव-शास्त्र-गुरुके अवलंबनसे सुधरेगा अथवा नहीं ?

उपयोगकी पर्याय अकारणीय है

समाधान—शुभरागके अवलंबनसे अथवा देव-शास्त्र-गुरुके अवलंबनसे उपयोग सुधरेगा ऐसा मानना वह भ्रम है। उपयोग तो मात्र आत्माका अवलंबन लेता है। जिस प्रकार आत्मद्रव्य अकारणीय है, उसका गुण अकारणीय है, उन्हें कोई कारण नहीं है, उसी प्रकार पर्याय भी अकारणीय है। उपयोग वह ज्ञानगुणकी पर्याय है उसका कोई कारण नहीं है। उपयोगकी पर्यायको देव-शास्त्र-गुरु अथवा शुभरागका कारण होने पर वह सुधर जाय ऐसा कभी नहीं बनता है। उपयोगरूप पर्याय भी अकारणीय है, अतः अपने शुद्ध आत्माका अवलंबन लेनेसे ही उपयोग सुधरता है।

ज्ञान ज्ञेयोंसे स्वतंत्र है

आत्माको पर ज्ञेयोंका अवलंबन तो नहीं ही है परन्तु उसकी ज्ञानपर्याय-उपयोग है उसे भी ज्ञेयोंका अवलंबन नहीं है। उपयोगका जानने-देखनेका स्वभाव है, वह ज्ञेयोंके कारण नहीं जानता है, उपयोगका ऐसा स्वरूप है-इस प्रकार उस ज्ञेयको तू जान। उपयोग अकारणीय है इस प्रकार जान। उपयोगमें पर ज्ञेयोंका अभाव है तो उनका अवलंबन किस प्रकार हो ? नहीं ही होता

है। परन्तु व्यवहारका कथन होता है वहां जीव अज्ञानके कारण भूल कर बैठते हैं।

यहां कोई प्रश्न करता है कि ज्ञान ज्ञेयोंका अवलंबन तो करता है न ?

समाधान—जब ज्ञानकी पर्याय प्रगट होती है तब ज्ञेय होते हैं इस प्रकार निमित्तका ज्ञान कराया है, परन्तु

१. जगतमें अनन्त ज्ञेय हैं उनके अवलंबनसे ज्ञान होता है ज्ञान ऐसा पराधीन नहीं है।

२. जीव वर्तमानमें ज्ञान करता है अतः ज्ञेयोंको आना पड़ता है ऐसा भी नहीं है। दोनों स्वतन्त्र हैं। तथा

३. उपयोग उन ज्ञेयोंका आधार लेता है तो सुधरता है इस प्रकार भी नहीं है क्योंकि ज्ञान कभी भी ज्ञेयोंका आधार नहीं लेता है। उसी प्रकार

४. परज्ञेय जगतमें अनन्त हैं अतः उपयोग परको जाननेका कार्य करता है इस प्रकार भी नहीं है क्योंकि उपयोगका स्वभाव स्वपर दोनोंको जाननेका है, पर है उसके कारण नहीं। उपयोग स्वतंत्र अपने आत्माके आधारसे कार्य करता है।

एकांत पर लक्षी ज्ञान, ज्ञान ही नहीं है।

पर पदार्थको ही मात्र लक्षमें लेकर, परके अवलंबनसे प्रगट होने वाला ज्ञान, ज्ञान ही नहीं है। निमित्तोंके अवलंबन सहित, मनके अवलंबन सहित, इन्द्रियोंके अवलंबन सहित, पंच-

परमेष्ठीके अवलंबन सहित, शास्त्रके अवलंबन सहित—ऐसे एकांत परलक्षी ज्ञानको ज्ञान ही नहीं कहा है, परन्तु उसे मिथ्याज्ञान कहा है, उसे यहां उपयोगमें समाविष्ट नहीं किया है।

साधकदशामें व्यवहार और निमित्तका स्वरूप

शुद्ध आत्मा ज्ञाता दृष्टा है, उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके जो ज्ञान स्व सन्मुख झुकता है उसीको यहां ज्ञान कहा है। सम्यग्दृष्टि जीवोंको परिपूर्ण वीतराग दशा न हो तब तक शुभराग आता है और सच्चे देव-शास्त्र-गुरुको माननेका विकल्प उठता है। रागकी भूमिका होनेसे परकी ओर लक्ष जाता है। परन्तु देव-शास्त्र-गुरु हैं, इसलिये परकी ओर लक्ष जाता है इस प्रकार धर्मात्मा जीव नहीं मानता है। साधकदशामें निश्चयके साथ व्यवहार होता है और उस समय सच्चे देव-शास्त्र-गुरुका लक्ष होता है परन्तु कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्रको माननेका लक्ष ही नहीं होता है। सच्चे देव-शास्त्र-गुरु हैं अतः शुभराग होता है—इस प्रकार नहीं है परन्तु निश्चयके भान सहित जीवोंको रागयुक्त दशा होने पर रागका तथा सच्चे देव-शास्त्र-गुरुका निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बतलाया है।

प्रश्न—सच्चे देव-शास्त्र-गुरुको माननेका शुभरागरूप व्यवहारभी बंधका कारण है और कुदेव आदिको माननेका अशुभरागरूप व्यवहारभी बंध का कारण है तो दोनों व्यवहारमें कोई अन्तर नहीं रहता है?

शुभराग तथा सत् देव-शास्त्र-गुरुको निमित्त-नैमित्तिक संबंध है।

समाधान—हां, दोनों प्रकारका राग निरर्थक ही है, दोनों बंधका कारण है, आत्माको किसी भी रागसे मोक्ष मार्गका धर्म नहीं होता है। जिस प्रकार पानी पानीके आधार है तो भी पानी भरनेके लिये घड़ा होता है परन्तु कोई कपड़ेमें पानी नहीं भरता है, ऐसा वहां निमित्तका मेल है। उसी प्रकार सच्चे देव-शास्त्र-गुरुके प्रतिका शुभराग और कुदेव-कुशास्त्र-कुगुरुके प्रतिका अशुभराग-दोनों राग चैतन्यकी जातिके लिये निरर्थक हैं. दोनों बंधके कारण हैं; तो भी साधक जीवको शुभरागके समय सच्चे देव-शास्त्र-गुरु ही निमित्तरूप होते हैं। **शुभराग होता है अतः सच्चे देव-गुरुको आना पड़ता है-ऐसा नहीं है और सच्चे देव-गुरु हैं इसलिये शुभराग हुआ है-ऐसा भी नहीं है, तो भी शुभरागमें सच्चे देव-गुरु ही निमित्त होते हैं, अन्य नहीं होते-ऐसा मेल है।**

ज्ञान उपयोगको शुभरागका अवलंबन नहीं है।

यहां तो विशेष यह कहना है कि विकल्प वाली दशामें राग होने पर भी धर्मात्मा जीवके ज्ञान उपयोगको रागका अवलंबन नहीं है। उस समय भी स्वयंका ज्ञाताद्रष्टा स्वभाव है उसको ही उसका उपयोग अवलंबन करता है। राग भी ज्ञेय है और उस ज्ञेयका ज्ञानमें सदाकाल अभाव है अतः उपयोग राग रहित है।

"ज्ञेय ज्ञेयमें हैं, ज्ञेय ज्ञान उपयोगमें नहीं है"

प्रश्न—सब ज्ञेयोंको निकाल दिया ?

समाधान—ज्ञेयोंको निकालनेका प्रश्न ही नहीं उठता है क्योंकि जो वस्तु किसीमें मिश्रित होगई है—प्रवेश कर गई हो उसे निकालनेका प्रश्न उठता है परन्तु जो वस्तु जिसमें नहीं होती उसे निकालनेका प्रसंग ही नहीं रहता है। पंचपरमेष्ठी आदि परज्ञेय उनमें हैं, उनका ज्ञान उपयोगमें अभाव है। शुभराग भी ज्ञेय है, उस शुभरागका भी ज्ञान उपयोगमें अभाव है। उपयोग स्वआत्माका है, उसे आत्मामें रखा है ऐसा कह सकते हैं।

इस वचनमें अलिंगग्रहणका अर्थ है—अ=नहीं, लिंग=उपयोग, ग्रहण—ज्ञेय पदार्थोंका आलंबन। उपयोगको ज्ञेय पदार्थोंका आलंबन नहीं है, 'अलिंगग्रहण' का यहां ऐसा अर्थ होता है।

जिस उपयोगको यहां ज्ञेय पदार्थोंका आलंबन नहीं है परन्तु स्वका आलंबन है, ऐसे उपयोग लक्षण वाला तेरा आत्मा है इस प्रकार तेरे स्वज्ञेयको तू जान। इस प्रकार तेरे आत्माको बाह्य पदार्थोंके आलंबन युक्त ज्ञान नहीं है परन्तु स्वभावके आलंबन युक्त ज्ञान है—इस प्रकार तेरे आत्मारूप स्वज्ञेयको तू जान।

(८) आत्मा उपयोगको बाहरसे नहीं लाता है इस प्रकार तू जान।

जो लिंगको अर्थात् उपयोग नामके लक्षणको ग्रहण नहीं करता है अर्थात् कि स्वयं (कहीं बाहरसे) नहीं लाता है वह अलिंग ग्रहण है। इस प्रकार आत्मा, जिसे कहींसे नहीं लाना पड़ता है ऐसे ज्ञान सहित है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

अब इस वचनमें उपयोग बाहरसे नहीं लाया जाता। इस

प्रकार कहते हैं। अनादिसे मिथ्यादृष्टिका उपयोग पर सन्मुख था, वह अब स्वयं कोई सत् समागम करे, वाणी सुने, इत्यादि शुभभाव करे तो उपयोग सुधरेगा कि नहीं? नहीं सुधरेगा। उपयोग कहीं बाहरसे नहीं लाया जाता, वह क्रमशः अंतरमें से प्रगट होता है, बाह्य किसी कारणमें से प्रगट नहीं होता है, अतः अकारणीय है।

इस प्रकार आत्माके उपयोगकी यथार्थ श्रद्धा करना-ज्ञान करना वह धर्मका कारण है।
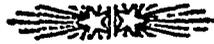
[माघ कृष्णा ६, मंगलवार]

ज्ञानोपयोग निरावलंबी है इस प्रकार तू जान—

१. आत्मा द्रव्य है, वह स्वयं इन्द्रियोंसे स्व तथा परको जाने उसका वैसा स्वरूप नहीं है।

२. आत्मा स्वयं इन्द्रियोंसे ज्ञात हो उसका वैसा स्वरूप नहीं है।

३. धूम्र द्वारा अग्नि ज्ञात हो उसी प्रकार आत्मा इन्द्रियोंके अनुमानसे ज्ञात हो उसका वैसा स्वभाव नहीं है।

४. अन्य द्वारा आत्मा केवल अनुमानसे ज्ञात हो, वह वैसा प्रमेय पदार्थ नहीं है। अन्य जीव राग रहित स्व संवेदन ज्ञान द्वारा आत्माको जाने तो वह ज्ञात हो सकता है।

५. स्वयं अन्य आत्माको केवल अनुमानसे जाने, स्वयंका वैसा स्वभाव नहीं है, वह स्वसंवेदनसे जान सकता है।

६. आत्मा प्रत्यक्ष ज्ञाता है। पर पदार्थकी अपेक्षा रहित, इन्द्रिय तथा मनके अवलंबन रहित, स्वयं स्वयंको प्रत्यक्ष जाने' वैसा ज्ञातास्वभाव है।

७. छह वचनोंमें द्रव्यका कथन किया है। सातवें वचनमें ज्ञान उपयोगका कथन करते हैं। उपयोग भी ज्ञेय है। उस ज्ञेयका स्वभाव कैसा है, वह कहते हैं—

पहले ज्ञान हीन था और तत्पश्चात् वृद्धिगत हो गया तो वह निमित्त तथा बाह्य पदार्थ थे अतः वह बढ़ा ? अथवा वह पदार्थोंका अवलंबन लेता होगा ? तो कहते हैं—नहीं। वह उपयोग पर पदार्थका अवलंबन नहीं लेता है। उसी प्रकार ज्ञान में जो ज्ञेय निमित्त होते हैं उन ज्ञेयोंका अवलंबन करके ज्ञान नहीं होता है, वह ज्ञान अपने ज्ञातादृष्टा स्वभावके ही अवलंबनसे होता है।

(८) ज्ञान उपयोगकी वृद्धि बाह्यमेंसे नहीं आती है इस प्रकार तू जान।

जो लिंग अर्थात उपयोग नामक लक्षणको ग्रहण नहीं करता है अर्थात् स्वयं (कहीं बाहरसे) नहीं लाया जाता है वह अलिंग ग्रहण है। इस प्रकार आत्मा, जिसे कहींसे नहीं लाया जाता, ऐसे ज्ञानवाला है; ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

पहले ज्ञानकी पर्यायमें हीनता थी, तत्पश्चात् दूसरे समय ज्ञानमें वृद्धि हुई वह वृद्धि बाहरसे आई ? सातवें वचनमें कहा था कि ज्ञान उपयोगको देव शास्त्र गुरुका आलंबन नहीं है तो उनके आश्रय बिना यह किस प्रकार वृद्धिगत हुआ ?

भाई ! वह बाहरसे नहीं आता है, अंतर तत्त्वमें से आता है। अब आठवें वचनमें कहते हैं कि ज्ञान परमेंसे लाया नहीं जाता जो ज्ञानका व्यापार ज्ञाता दृष्टा शुद्ध स्वभावका अवलंबन छोड़कर निमित्तका लक्ष करता है उसको ज्ञान उपयोग ही नहीं कहते हैं। जिस प्रकार इन्द्रियोंसे ज्ञान करे वह आत्मा नहीं कहलाता उसी प्रकार जो उपयोग परका अवलंबन लेवे उसे उपयोग नहीं कहते हैं।

अज्ञानी तर्क करता है कि द्रव्य-गुण तो त्रिकाल शुद्ध एक रूप है, उसको अवलंबन नहीं होता ऐसा कथन तो ठीक है परन्तु एकके बाद एक होती हुई पर्यायोंमें एकरूपता नहीं रहती और ज्ञान की विशेष विशेष निर्मलता अनेक प्रकारकी होती है वह ज्ञेयोंके आधारसे होती होगी ? मन तथा शुभरागका अवलंबन है इसलिये, शुद्धता बढ़ी है न ? नहीं। वह निर्मलताकी वृद्धि परपदार्थोंमें से अथवा शुभरागमेंसे नहीं आती है। वह अपने शुद्ध द्रव्यस्वभावमेंसे ही आती है, अन्तर परिणमनकी एकाग्रता बढ़ते बढ़ते बाह्यमें प्रगट दिखाई देती है।

ज्ञानके वैभवका कारण पूर्व आचार्योंकी परम्परा किस प्रकार कहा ?

प्रश्न—यदि यह कहते हो कि निर्मलता अंतरमेंसे प्रगट

होती है तो कुन्दकुन्दाचार्य भगवानने समयसार गाथा ५ में कहा है कि हमारे स्वसंवेदन ज्ञानका जन्म-पूर्वाचार्योंके अनुग्रहपूर्वक उपदेशसे हुआ है और आचार्योंकी परम्परासे यह वैभव हमको मिला है—इस प्रकार कैसे कहा ?

समाधान—जब कोई भी ज्ञानी अपने ज्ञान स्वभाव चेतन के आश्रयसे अपने ज्ञानकी अटूट धारा टिकाये रखता है तब अपने ज्ञानमें निमित्तरूप हुए पूर्व आचार्य कैसे थे उन निमित्तोंका ज्ञान कराते हैं। प्रत्येक आत्मा स्वयं स्वयंका ज्ञान प्रवाह उत्तरोत्तर टिकाये रखता है, तब क्या क्या निमित्त थे, उनका ज्ञान कराते हैं। जिस प्रकार ज्ञानियोंकी परम्परामें उत्तरोत्तर ज्ञान टिकाये रखनेमें संधि है उसी प्रकार उनके निमित्तोंकी परम्परामें उत्तरोत्तर संधि वतला कर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धका कथन किया है।

ज्ञान उपयोगकी अचानक वृद्धिका कारण कौन ?

गौतम गणधर प्रभुके निकट गये, उनको पहले ज्ञान बहुत हीन था और भगवानके समवशरणमें गये, भगवानकी वाणी सुन-कर बारह अंग और चौदह पूर्वका ज्ञान हुआ। पहले मतिश्रुत ज्ञान था और थोड़े समयमें चार ज्ञानके स्वामी हो गये तो इतना सब ज्ञान कहांसे आया ? भगवानकी वाणीमेंसे आया ? निमित्त ऊपर लक्ष करनेसे आया ?

किसी जीवको सामान्य मति श्रुत ज्ञान हो और तत्पश्चात् दो घड़ीमें पुरुषार्थ करके एकाग्र होकर केवलज्ञान प्रगट करता है तो इतनी सब वृद्धि कहांसे आई ?

यहां भी सुननेसे पहले ज्ञान हीन होता है और शब्दों और वाणी कानोंमें पड़नेके बाद ज्ञान बढ़ता है, वह वृद्धि वाणीमें से आती होगी ?

अज्ञानी कहता है कि सब आत्माओंमें द्रव्य-गुण तो अनादि अनंत शुद्ध परिपूर्ण भरे हैं और पर्यायमें प्रगटताकी वृद्धि दिखाई देती है वह निमित्त आता है तब बढ़ती है और निमित्त नहीं आता है तो नहीं बढ़ती है।

ज्ञानी पुरुष कहते हैं कि ऐसा नहीं है। वह वृद्धि किन्हीं बाह्य पदार्थों अथवा शुभरागमें से नहीं आती है। अन्तरमें ज्ञान शक्तिका भण्डार पड़ा है उसमेंसे अपने पुरुषार्थ द्वारा वह प्रगट होती है।

ज्ञानके ज्वारकी तरंगें
चैतन्य समुद्रके मध्यबिंदुमेंसे उछलती हैं।

"प्रवचन समुद्र बिंदुमें, उलटी आवे जेम।
चौदह पूर्वकी लब्धिका, उदाहरण भी तेम॥"

(श्रीमद् राजचंद्र)

समुद्रमें ज्वार आता है उसका क्या कारण है ? ऊपरसे खूब वर्षा हो रही है अतः ज्वार आया ? बहुतसी नदियां आकर समुद्रमें मिलती हैं अतः समुद्र उछल रहा है ? नहीं। चाहे जितनी नदियां मिलें और चाहे जितनी वर्षा हो रही हो तोभी समुद्रके उस ज्वारको बाहरके पानीका अवलंबन नहीं है। वह ज्वार तो समुद्रके मध्यबिंदुमें से आता है।

उसी न्यायसे

इस चैतन्य स्वभावके मध्यबिंदुमें से ज्ञानका ज्वार उछलता है। आत्मा शुद्ध चिदानंद स्वरूप है, उसमें एकाग्रता करने पर जो शक्तियाँ अंतरमें विद्यमान हैं उनमेंसे वह प्रगट होता है। बाह्य वाणी, भगवान अथवा गुरु प्रतिके किसी शुभरागमेंसे वह वृद्धि नहीं होती है। उसे राग तथा श्रवणका आधार नहीं है। उस ज्ञानकी तरंगें अंतर शक्ति स्वभाव चैतन्य समुद्रमेंसे उछल कर प्रगट होती हैं।

ज्ञानकी वृद्धिके समय बाह्य पदार्थोंपर मात्र उपचार किया जाता है।

कोई कहता है कि शास्त्र वाचन किया अतः ज्ञानमें वृद्धि हुई। और शास्त्रमें भी लेख आता है कि शिष्य विनयसे पढ़ता है तो ज्ञानकी वृद्धि होती है। गुरुगमसे (गुरुके समागममें) पढ़े तो ज्ञान बढ़ता है। तथा कुन्दकुन्दाचार्य भगवान भी कहते हैं कि गुरुकी कृपासे हमको यह ज्ञान वैभव प्राप्त हुआ है। सब कथन व्यवहारके हैं। अपने कारणसे शुद्ध स्वभावमें से ज्ञानकी वृद्धि करता है तब गुरु, शास्त्र आदिको निमित्त कहकर उपचार करते हैं। वह मात्र बाह्य निमित्त है। यथार्थमें तो वह सब ज्ञान अंतरमें से प्रगट होता है।

कोई प्रश्न करता है कि ज्ञान अंतरसे प्रगट होता है तो यह मंदिर, प्रतिमाजी, समयसार आदिका अवलंबन किस प्रकार है?

भाई, ये सब वस्तुएं आत्माके कारण नहीं आती हैं और आत्माको उनका अवलंबन नहीं है। जीवको शुभराग होता है तब उन पदार्थोंपर लक्ष जाता है। स्वयं ज्ञानकी वृद्धि करता है तब उन पदार्थोंको निमित्त कहा जाता है।

उपयोगका स्वरूप

जिस प्रकार जो आत्मा इन्द्रियोंसे जाननेका कार्य करता है उसे आत्मा नहीं कहते हैं, उसी प्रकार जो आत्मा अपनेको पुण्यवान-पापवान मानता है उसे आत्मा नहीं कहते हैं; उसी प्रकार जो उपयोग अपने ज्ञातादृष्टा शुद्धस्वभावका अवलंबन छोड़ कर, परका अर्थात् देव-शास्त्र-गुरु आदि बाह्य निमित्तोंका, वाणीका अथवा शुभरागका अवलंबन लेता है उसे यहां उपयोग ही नहीं कहा है।

जो आत्मा इन्द्रियोंका लक्ष छोड़कर अतीन्द्रिय स्वभावका लक्ष करता है तथा जो स्वयंको पुण्य-पाप रहित शुद्ध जानता है वही आत्मा है उसी प्रकार देव, शास्त्र, गुरु, वाणी तथा शुभराग तथा अनंत पर पदार्थोंका अवलंबन छोड़कर अपने ज्ञानस्वभावमें जो उपयोग एकाग्र होता है उसे ही उपयोग कहा जाता है।

यहां आठवें वचनमें इस प्रकार कहा है—अ=नहीं, लिंग=उपयोग, ग्रहण—बाहरसे लाना, अर्थात् ज्ञान उपयोगकी वृद्धि कहीं बाहरसे नहीं होती है ऐसा तू उपयोगरूप ज्ञेयका स्वभाव जान। अतः आत्मा कहीं बाहरसे ज्ञान नहीं लाता है इस प्रकार तेरे स्वज्ञेयको जान।

(९) तेरे ज्ञान उपयोगका कोई हरण नहीं कर सकता है इस प्रकार तू जान।

लिंग अर्थात् उपयोग नामक लक्षणका ग्रहण अर्थात् परसे हरण नहीं हो सकता है (अन्य द्वारा नहीं ले जाया जा सकता है) वह अलिंगग्रहण है; इस प्रकार आत्माका ज्ञान हरण नहीं किया जा सकता है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

अज्ञानीकी उपयोग सम्बन्धी भ्रमणा

अज्ञानी मानता है कि घरमें पुत्रोंने कलह की अतः मेरा ज्ञान च्युत हो गया, शरीर रोगी होनेसे ज्ञान घट गया, ध्यानमें बैठा था उस समय कोई तलवारसे शरीरको मारनेके लिये आता था अतः मेरा उपयोग हीन हो गया; हमें तो बहुत ध्यान करना था परन्तु भाई! क्या करें, स्त्री-पुत्र कोलाहल करते हैं, लड़के बाजा बजाते हैं, अतः हमारा उपयोग च्युत हो जाता है। परिषह होता है तब भी हमारा उपयोग काम नहीं करता है। सात्त्विक भोजन लेते हैं तब तक उपयोग अच्छा रहता है परन्तु हलका भोजन खाते हैं तो उपयोग खराब हो जाता है, कानमें कीड़ा काटता हो ऐसी गाली सुननेसे उपयोग च्युत हो जाता है, शरीरका संहनन शक्तिशाली हो तो उपयोग अच्छा काम करता है—इस प्रकार अनेक प्रकारकी उपयोग सम्बन्धी भ्रमणाका अज्ञानी सेवन करता है।

कोई उपयोग रूपी धन हरण नहीं कर सकता है।

यह सब अज्ञानीकी भ्रमणा है। बाहरके जड़ अथवा चेतन पदार्थोंका आत्मामें अत्यन्त अभाव है। वह आत्माके उपयोगका घात

कैसे कर सकता है ? घात ही नहीं कर सकता है। अनुकूल संयोगोंसे ज्ञान उपयोग बढ़े और प्रतिकूल संयोगोंसे घटे, तथा जड़ कर्म मंद हो तो उपयोग बढ़े और कर्मका उदय तीव्र हो तो उपयोग हीन हो जाय, उपयोगका ऐसा स्वरूप ही नहीं है।

लोकमें कहते हैं कि चोर किसीकी अमुक वस्तु लूट ले गया अथवा हरण कर ले गया, उसी प्रकार यह उपयोगरूपी धन कोई लूट लेता होगा ? नहीं। ज्ञान उपयोगरूप धन किसीसे हरण नहीं किया जा सकता है अथवा किसीसे लूटा नहीं जा सकता है।

अप्रतिहत उपयोग

ज्ञान-उपयोगका स्वरूप परद्वारा घात होनेका ही नहीं है। क्योंकि परपदार्थ ज्ञानमें कुछ भी कर सकनेमें असमर्थ हैं। परन्तु 'ज्ञानका जो उपयोग अपनी पर्यायकी निर्बलतासे होते हुए रागके कारण हीन होता है, वह बात भी यहां नहीं ली है और उसे उपयोग ही नहीं कहा है क्योंकि जो उपयोग चैतन्यस्वभावके आश्रयसे कार्य करता है और उसका ही आश्रय लेता है उस उपयोगमें राग ही नहीं है, तो फिर वह किस प्रकार हीन हो ? स्व के अवलंबन पूर्वकका उपयोग आत्मामें एकाकार होता है उसे ही यहां उपयोग कहा है। जिस उपयोगका परसे भी हरण नहीं होता है वह स्व से किस प्रकार हरण किया जाय ? जो उपयोग च्युत होता है उसे यहां उपयोग ही नहीं गिना है, परन्तु चैतन्यके आश्रयसे एकाकार होकर वृद्धि को प्राप्त होता है वैसे अप्रतिहत उपयोगको ही उपयोग कहा है।

निमित्तोंमें तथा रागमें अटकता है वह उपयोग ही नहीं है।

जो जीव अपना स्वरूप नहीं समझते हैं वे अनात्मा हैं। जो उपयोग स्वद्रव्यका आश्रय नहीं करता है और परमें भ्रमण किया करता है उसे उपयोग ही नहीं कहते हैं। जैसे आत्मा अनादि अनंत है, वह किसीके कारण है ही नहीं। उसी प्रकार उपयोग भी बाहरी कारणसे लाया जाय, बढ़े अथवा घटे उसका वैसा स्वरूप ही नहीं है। जो उपयोग अपने द्रव्यका आश्रय नहीं छोड़ता, और परका आश्रय नहीं लेता वही उपयोग है। द्रव्यका आश्रय नहीं छोड़ता, अर्थात् स्वभावमें एकाकार होता हुआ वृद्धिको ही प्राप्त होता है तथा परका आश्रय नहीं करता अर्थात् कभी भी हरण नहीं किया जा सकता उपयोगका ऐसा स्वरूप है। निमित्तों तथा रागमें अटकता है (रुकता है) वह उपयोग ही नहीं है।

उपयोग पर्याय है। 'है' उसे कौन हरण कर सकता है।

इस जगतमें द्रव्य-गुण-पर्याय तीनों वस्तु हैं। जिस प्रकार द्रव्य ज्ञेय है, गुण ज्ञेय है उसी प्रकार पर्याय भी ज्ञेय है। उपयोग ज्ञानगुणकी पर्याय है तथा वह ज्ञेय भी है। यह ज्ञेय अधिकार है। पर्याय-ज्ञेय कैसी होती है उसका कथन करते हैं। सातवें वचनमें कहा था कि ज्ञान पर्यायको परका अवलंबन नहीं है।

ज्ञेय पदार्थ—उपयोग जो 'है, है, है', उसे परका अवलंबन किस प्रकार हो ? तथा ज्ञेय पदार्थ-उपयोग 'है, है, है' उसे बाहरसे किस प्रकार लाया जाय ? तथा ज्ञेय पदार्थ-उपयोग जो 'है, है, है,' उसे कोई दूसरा किस प्रकार हरण कर सकता है ?

अर्थात् जो उपयोग 'है' उसे परका अवलंबन नहीं हो सकता है इस प्रकार सातवें वचनमें कहा है; उसे वाहरसे लाया नहीं जाता है इस प्रकार आठवें वचनमें कहा है, उसे कोई हरण नहीं कर सकता है इस प्रकार नवमें वचनमें कहा है। जिस प्रकार द्रव्य है, गुण है, उसी प्रकार पर्याय भी "है" अतः ज्ञानउपयोगरूप पर्याय "है", उसे कौन हरण करके ले जाय ? कोई हरण करके ले जाय इस प्रकार कहो, तो "है" पना नहीं रहता है, "है" पनेकी श्रद्धा नहीं रहती है। अतः पर्याय "है", इस प्रकार स्वीकार करने वालेको कोई हरण करके ले जाय, ऐसी शंका ही नहीं होती है।

पंचमकाल अथवा प्रतिकूलता ज्ञान उपयोगका हरण नहीं कर सकते हैं।

उस ज्ञेय पर्यायका स्वभाव इस प्रकारका है कि वह निमित्त अथवा वाहरसे नहीं लाई जाती है, वह स्वका आश्रय नहीं छोड़ती है और कोई हरण करके ले जाय ऐसा भी नहीं है। ज्ञानका कार्य क्या ? ज्ञेयोंका अवलंबन लेना ज्ञानका कार्य नहीं है, वाहरसे वृद्धिको प्राप्त होना ज्ञानका कार्य नहीं है और किसीके द्वारा हीन हो जाय ऐसा भी वह ज्ञान नहीं है। उस ज्ञेयका ऐसा स्वभाव है।

जगतमें जीव कहते हैं कि भाई ! इस पंचमकालमें जन्म हुआ और कालके कारण उपयोग हीन होगया। परन्तु वह वात मिथ्या है। उपयोग हीन हो जाय, उपयोगका वैसा स्वरूप ही नहीं है। संसारमें लक्ष्मी जाने पर तथा प्रतिकूलता आने पर अज्ञानी जीव मानते हैं कि हमारी प्रतिष्ठा नष्ट हो गई, परन्तु भाई ! उसमें

क्या नष्ट हुआ ? अनुकूल संयोग तथा लक्ष्मी थी तो मेरी प्रतिष्ठा थी और प्रतिकूलता होनेसे मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो गई—वह तो तूने सभी कल्पना नवीन उत्पन्न की हैं। ज्ञान पर्याय प्रतिकूल संयोगोंसे नष्ट हो जाये वैसा उसका स्वभाव ही नहीं है।

तथा कोई जीव ग्यारहवें गुणस्थानसे गिरकर क्रमशः वह निगोदमें जाये तो उस जीवके ज्ञान-उपयोगको उपयोग ही नहीं कहलाता। जो उपयोग आत्मामें जाता है उसे ही उपयोग कहते हैं। जो परमें अथवा रागमें रहता है उसे उपयोग ही नहीं कहा है। परसे घात नहीं हो और स्व से च्युत नहीं हो परन्तु स्वमें एकाकार रहता है यही उपयोगका स्वभाव है।

इस वचनमें अलिंगग्रहणका अर्थ—अ=नहीं, लिंग=उपयोग, ग्रहण=परसे हरण होना वह, अर्थात् उपयोग पर द्वारा हरण नहीं किया जा सकता है। इस प्रकार आत्माका ज्ञान हरण नहीं किया जा सकता है ऐसा उपयोगका स्वरूप है। उपयोग भी एक ज्ञेय है। तेरे उपयोग रूपी पर्यायको-ज्ञेयको हे शिष्य ! तू इस प्रकार जान।

(१०) तेरे ज्ञान उपयोगमें कोई मलिनता नहीं है, इस प्रकार तू जान।

जिसके लिंगमें अर्थात् उपयोग नामक लक्षणमें ग्रहण अर्थात् सूर्यकी भांति उपराग (मलिनता, विकार) नहीं है वह अलिंगग्रहण है। इस प्रकार आत्मा शुद्धोपयोगस्वभावी है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

द्रव्य, गुण तो अनादि अनंत शुद्ध हैं, परन्तु उपयोगमें भी मलिनता नहीं है इस प्रकार इस वचनमें कहा है। चन्द्र कलंकित कहलाता है परन्तु सूर्यमें कोई धब्बा नहीं है। जिस प्रकार सूर्यमें किसी भी प्रकारकी मलिनता नहीं है उसी प्रकार उपयोग भी सूर्यकी भांति कलंक रहित है।

स्व-स्वरूपके गीत (स्तुति) यही भगवानके गीत (स्तुति) हैं।

चन्द्रमें जो हिरनका आकार दिखाई देता है उस परसे पद्मनंदि आचार्य भगवान् अलंकार करके भगवान्के गुणगान करते हैं हे भगवान! हे नाथ! चन्द्रलोकमें तेरे गुणगान देवियां सितारसे गा रही हैं, वह इतनी सुन्दर और भक्तियुक्त है कि उसे सुननेके लिये हिरण भी चंद्रलोकमें जाता है। देवियां, अप्सराएं, देव सब तेरा गुणगान करते हैं और त्रियक्लोकमें से हिरण वहां गया तो हम निर्ग्रन्थ मुनि इस स्वरूपका गाना गाते हैं जो कि तेरा ही गान है क्योंकि तेरे स्वरूपमें और हमारे स्वरूपमें निश्चयसे कोई अंतर नहीं है।

उपयोग कैसा है?

यहां शुद्धोपयोगका कथन चलता है। शुद्धोपयोगमें विकार ही नहीं है। परका लक्ष रखकर जो उपयोग बढ़ता है और परमें रुक कर जो उपयोग नष्ट होता है उसे यहां उपयोग ही नहीं कहा है। दया, दान, काम, क्रोधभाव वे आत्मा नहीं है, अनात्मा है अधर्मभाव है, वह धर्मभाव नहीं है। उस अशुद्धोपयोगको उपयोग

ही नहीं कहा है। अज्ञानी मानता है कि मलिनता मेरे उपयोगमें है,—वह तो भ्रान्ति है।

जिस प्रकार द्रव्य शुद्ध है, गुण शुद्ध है, उसी प्रकार ज्ञानकी पर्याय भी शुद्ध है, इस प्रकार कहा है। अपना ज्ञाता दृष्टा स्वभाव शुद्ध है, उसमें जो पर्याय एकाकार होती है उस पर्यायको ही उपयोग कहा है और शुद्धोपयोगस्वभावी आत्माको ही आत्मा कहा है।

ज्ञानीको वर्तमानमें राग निर्बलताके कारण है। उस ओरके अशुद्ध उपयोगको भी यहां उपयोगमें नहीं गिना है। शुद्ध स्वभाव सन्मुख रहनेसे शुद्धता होती है उस शुद्धताको ही उपयोग कहा है।

यहां अलिंगग्रहणका अर्थ :—अ=नहीं, लिंग=उपयोग, ग्रहण=मलिनता। अर्थात् जिसमें मलिनता नहीं है वैसा उपयोग जिसका लक्षण है ऐसा शुद्ध उपयोगस्वभावी तेरा आत्मा है इस प्रकार तेरे स्वज्ञेयको तू जान।

(११) उपयोग द्रव्यकर्मको ग्रहण नहीं करता है इस प्रकार तू जान।

लिंग द्वारा अर्थात् उपयोग नामक लक्षण द्वारा ग्रहण अर्थात् पौद्गलिक कर्मका ग्रहण जिसे नहीं है वह अलिंगग्रहण है। इस प्रकार आत्मा द्रव्य-कर्मसे असंयुक्त (असम्बद्ध) है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

उपयोग द्रव्यकर्मका ग्रहण भी नहीं करता है परन्तु द्रव्य-कर्मके आनेमें निमित्त भी नहीं होता है, इस प्रकार यहां कहना है।

शुद्धोपयोगको जड़कर्मके साथ निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध भी नहीं है।

यहां कोई प्रश्न करता है कि शास्त्रमें उल्लेख तो है कि कषायसे स्थिति बंध तथा अनुभाग बंध होता है और योगसे प्रकृति-बंध तथा प्रदेशबंध होता है, उससे जड़कर्मोंका आगमन होता है, और यहां कहा है कि उपयोग द्रव्यकर्ममें निमित्त भी नहीं है तो उसका क्या स्पष्टीकरण है ?

समाधानः—भाई ! योग और कषायकी विकारी पर्यायको आत्मा ही नहीं कहते हैं। उपयोगमें मलिनता ही नहीं है, इस प्रकार दसवें वचनमें कहा है। जब उपयोगमें मलिनता ही नहीं है तो फिर उसके निमित्तसे आते हुए द्रव्यकर्मको उपयोग किसप्रकार ग्रहण करे ? अथवा द्रव्यकर्ममें उपयोग निमित्त भी किस प्रकार हो ? अर्थात् ग्रहण भी नहीं करता है और उसीप्रकार निमित्त भी नहीं होता है। जड़कर्मोंका जो अपने स्वयंके कारणसे आत्माके साथ एक क्षेत्रमें आगमन होता है उसमें मलिनता निमित्तरूप होती है परन्तु जहां उपयोगमें मलिनता ही नहीं है वहां मलिनता तथा जड़कर्मका जो निमित्त-नैमित्तिक संबंध है वह भी उपयोगमें नहीं है। यहां निमित्त-नैमित्तिक संबंध उड़ा दिया है। शुद्ध उपयोगमें ऐसा निमित्त-नैमित्तिक संबंध ही नहीं है।

आत्मा सामान्य द्रव्य तथा गुण जड़ कर्मको ग्रहण नहीं करते उसी प्रकार शुद्ध उपयोग भी कर्मको ग्रहण नहीं करता है।

यहां ग्रहण करने की तो बात ही नहीं है परन्तु द्रव्यकर्म अपने कारण से आये उसमें द्रव्य-गुण तो निमित्त नहीं किन्तु शुद्ध उपयोग भी निमित्त नहीं है। यहां कोई प्रश्न करता है कि शास्त्रमें उल्लेख है—

''जीव वीर्यकी स्फुरणा ग्रहण करे जड़ धूप''

वहां तो कहा है कि जीवके विपरीत वीर्यकी स्फुरणासे आत्मा जड़कर्म ग्रहण करता है और आप तो अस्वीकार करते हो उसका क्या समाधान है ?

समाधानः—वहां जीवकी विकारी पर्याय सिद्ध करनी है। जीव स्वयं विपरीत पुरुषार्थ करता है तब जड़कर्मके साथ उसका निमित्त-नैमित्तिक संबंध है। वहां भी जीवकी विकारी पर्याय कर्मको ग्रहण करती है अथवा स्पर्श करती है अथवा खींच लाती है इस प्रकार नहीं कहना है परन्तु अशुद्ध उपादानका तथा जड़कर्मका निमित्त-नैमित्तिक संबंध बताना है। यहां तो शुद्ध उपयोगका कथन चलता है और शुद्ध उपयोगमें मलिनताका अभाव है अतः वह कर्मको ग्रहण नहीं करता है अथवा उसके साथ निमित्त-नैमित्तिक संबंध नहीं है इस प्रकार कहा है।

साधक जीवको समय समय शुद्धोपयोगकी ही मुख्यता वर्तती है।

इस प्रकार शुद्ध द्रव्य, शुद्ध गुण तथा शुद्ध उपयोग होकर सम्पूर्ण आत्मा है। निमित्त नैमित्तिक सम्बन्धयुक्त पर्यायको अनात्मा

कहा है, वह आत्मा ही नहीं है। गोम्मटसारमें बहुत बार उल्लेख है कि चौथे गुणस्थानमें जीवको इतनी प्रकृतियोंका बंध पड़ता है और छट्ठे गुणस्थानमें इतनी प्रकृतियोंका बंध पड़ता है। वे सब उल्लेख अशुद्ध उपादानके साथका जड़कर्मका निमित्त-नैमित्तिक संबंध उस उस भूमिकामें किस प्रकार है, उसे बताते हैं; परन्तु उस भूमिकामें विद्यमान शुद्धउपयोगको जड़कर्मके साथ बिलकुल सम्बंध नहीं है। साधकदशामें मलिनता अल्प है परन्तु उसे गौण करके शुद्ध उपयोगको जोकि स्वभावकी ओर झुका है मुख्य गिनकर मलिनताको अनात्मा कहा है। यह साधककी बात है। साधक जीवको समय समय 'मैं ज्ञातादृष्टा शुद्धस्वभावी हूँ' उस ओरके झुकावकी ही मुख्यता वर्तती है; और दया दान आदि शुभाशुभ भावोंकी पर्यायको जिसमें द्रव्यकर्म निमित्त होते हैं वह गौण करता है, उसकी मुख्यता नहीं करता है। मलिनतायुक्त पर्यायको एकसमय भी मुख्य करता है तो साधक नहीं रहता है परन्तु मिथ्यादृष्टि हो जाता है। साधकको सदा शुद्ध ज्ञाताकी ओर झुकी पर्यायकी, जो स्वभावके साथ अभेद होती है उसकी मुख्यता होती है। उस मुख्यताकी अपेक्षासे उस उपयोगको द्रव्यकर्मका ग्रहण नहीं होता है, इस प्रकार कहा है।

उपयोग लक्षण और आत्मा लक्ष्य

इस प्रकार लक्षण-लक्ष्य परसे पांच वचनोंका सार।

आत्मा द्रव्य है और उपयोग उसकी पर्याय है अथवा आत्मा लक्ष्य है और उपयोग उसका लक्षण है। लक्षणके बिना लक्ष्य नहीं

हो सकता है और लक्षके विना लक्षण नहीं हो सकता। आत्मा वह पहिचानने योग्य पदार्थ लक्ष्य है और उपयोग उसका लक्षण है जिससे आत्मा पहिचाना जा सकता है।

१. सातवें वचनमें उपयोग नामक लक्षण, लक्ष्य ऐसे आत्माका ही अवलंबन करता है अतः उसे परपदार्थोंका अवलंबन नहीं है।

२. आठवें वचनमें उपयोग नामक लक्षण, लक्ष्य ऐसे आत्मामेंसे आता है। अतः ज्ञान पर पदार्थोंमेंसे नहीं आता है।

३. नवमें वचनमें उपयोग नामक लक्षण, लक्ष्य ऐसे आत्माको ही आश्रय करता है अतः ज्ञान परद्वारा हरण नहीं किया जा सकता है।

४ दसवें वचनमें उपयोग नामक लक्षण, लक्ष्य ऐसे आत्मामें ही एकाग्र होता है, पर पदार्थोंमें एकाग्र नहीं होता है अतः उसमें मलिनता नहीं है।

५. ग्यारहवें वचनमें उपयोग नामक लक्षण, लक्ष्य ऐसे आत्माको ही ग्रहण करता है परन्तु परपदार्थ, कर्म आदिका ग्रहण नहीं करता है, अतः वह असंयुक्त है।

इस प्रकार ग्यारहवें वचनमें अलिंगग्रहण का अर्थ:— अ=नहीं, लिंग=उपयोग, ग्रहण=पौद्गलिक कर्मका ग्रहण। अर्थात् उपयोगको पौद्गलिक कर्मका ग्रहण नहीं होता, अतः आत्मा द्रव्य-कर्मसे असंयुक्त है।

इस प्रकार अपना ज्ञान-उपयोगभी ज्ञेय है। वह ज्ञेय पुद्गल

कर्मको ग्रहण नहीं करता है जिससे उपयोग लक्षणयुक्त आत्माभी पुद्गलकर्मको ग्रहण नहीं करता है—वैसा तेरा स्वज्ञेय जिस प्रकार है उस प्रकार तू जान—इस प्रकार आचार्य भगवान् आदेश देते हैं।

इस प्रकार ज्ञेय जिस प्रकार है, उसी प्रकार यथार्थ जानना-सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका कारण है और उससे धर्म और शांति होती है।

[माघ कृष्णा ७, बुधवार]

यह आत्मा है उसके उपयोग अर्थात् ज्ञानका व्यापार है उसमें पौद्गलिक कर्मका ग्रहण नहीं है। स्वसन्मुख उपयोगको यहां उपयोग कहते हैं। जो पर सन्मुख दृष्टि करता है उसे पुण्य-पापका परिणाम होता है। पुण्य-पापके परिणाम वह आत्मा नहीं है परन्तु आस्रव है-विकार है, वह आत्माका स्वभाव नहीं है। आत्मा उपयोगलक्षण द्वारा कर्मका ग्रहण नहीं करता है। जो स्वसन्मुखता नहीं छोड़ता है उसे उपयोग कहते हैं।

(७) ज्ञान उपयोगको परका आलंबन नहीं है।

सातवें वचनमें कहता हूं कि ज्ञान उपयोगको ज्ञेयोंका अवलंबन नहीं है। उपयोगको स्वज्ञेय आत्मपदार्थका अवलंबन है। स्वमें परज्ञेयोंका अभाव है। जिसमें जिसका अभाव है उसका अवलंबन नहीं हो सकता है। अतः आत्माको उन ज्ञेयोंका अवलंबन

नहीं है। स्वका अवलंबन करता है उसीको उपयोग कहते हैं और जो ज्ञान पर पदार्थका अवलंबन लेता है उसे उपयोग नहीं कहते हैं।

(८) ज्ञान उपयोग बाहरसे नहीं लाया जाता है।

आठवें वचनमें कहता हूँ कि उपयोग पर पदार्थ में से नहीं लाया जा सकता है। परपदार्थकी ओर झुके उपयोगको उपयोग ही नहीं कहते हैं, वह आत्मा ही नहीं है। जो आत्म तत्त्वकी ओर झुकता है वही उपयोग है और वही आत्मा है। आत्मामें परपदार्थो तथा पुण्यपापका अभाव है अतः उपयोग पुण्य-पाप तथा परपदार्थों में से नहीं लाया जा सकता है।

(९) ज्ञान-उपयोग हरण नहीं किया जा सकता है।

नवमें वचनमें कहता हूँ कि स्वसन्मुख रहकर जो कार्य करता है वह उपयोग है। ज्ञान आत्माका है अतः उसे कोई अन्य वस्तु हरण करे ऐसा नहीं बन सकता है। अन्य वस्तुका आत्मामें अभाव है अतः ज्ञान हरण नहीं किया जा सकता है। ऐसे उपयोग लक्षणयुक्त आत्मा है इस प्रकार तू जान।

(१०) ज्ञानउपयोगमें मलिनता नहीं है।

दसवें वचनमें कहता हूँ कि ज्ञान उपयोगमें मलिनता नहीं है। जो उपयोग स्वसन्मुख झुकता है और आत्मामें एकाकार होता है उसे उपयोग कहते हैं। जिसका उपयोग है वह तो ज्ञान, दर्शन, चारित्र आदि अनंत गुणोंका पिंड है। ज्ञान आत्मा का है तो भी जो ज्ञान पुण्य-पापका कार्य करता है उसे ज्ञान ही नहीं कहते हैं इस प्रकार हे शिष्य ! तू जान। ज्ञान-उपयोग तेरी ओर झुकता है तो

वह तेरी वस्तु कहलाती है परन्तु पुण्य-पापकी ओर झुकता है तो तेरी वस्तु नहीं कहलाती है। स्वकी ओर झुकना वह धर्मका कार्य है और परकी ओर झुकना वह अधर्मका कार्य है। सूर्यको मलिनता नहीं है उसी प्रकार यहां शुद्धोपयोगमें मलिनता नहीं है।

(११) ज्ञान-उपयोग कर्मका ग्रहण नहीं करता है।

ग्यारहवें वचनमें कहता हूँ कि उपयोग अपना है वह परको किस प्रकार ग्रहण कर सकता है? अथवा परको ग्रहण करनेमें निमित्त भी किस प्रकार हो सकता है? नहीं ही होता है। परकी ओर झुककर कर्म बननेमें जो निमित्त हो वह स्वका उपयोग ही नहीं है परन्तु जो श्रद्धा, ज्ञान, स्थिरताका कार्य करता है वह उपयोग है। उपयोग लक्षण द्वारा आत्मा पहिचाना जाता है। स्वसन्मुख दशा छोड़कर मलिन परिणामरूप अधर्म उत्पन्न करके कर्मको ग्रहण करनेमें निमित्त हो उसे आत्माका उपयोग ही नहीं कहते हैं। जो उपयोग आत्मामें एकाकार होकर सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्ररूपी धर्म उत्पन्न करता है उसे आत्माका उपयोग कहा है।

(१२) आत्मा विषयोंका भोक्ता नहीं है परन्तु स्वका भोक्ता है इस प्रकार स्वज्ञेयको तू जान।

जिसे लिंगों द्वारा अर्थात् इन्द्रियों द्वारा, ग्रहण अर्थात् विषयोंका उपभोग नहीं है वह अलिंग ग्रहण है। इस प्रकार आत्मा विषयोंका उपभोक्ता नहीं है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

आत्मा चैतन्य ज्ञाता दृष्टा स्वभावी है। उसमें शांति और आनन्दका सद्भाव है। इंद्रियां, शरीर, लड्डू, रोटी, दाल, भात,

शाक आदि पदार्थ जड़ हैं उनमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण हैं, वे आत्मासे पर हैं। पर पदार्थोंका आत्मामें अभाव है और परपदार्थोंमें आत्मा का अभाव है। अतः आत्मा उन परपदार्थोंको नहीं भोगता है। जिस वस्तुका जिसमें अभाव हो वह उसे किस प्रकार भोग सकता है ? आत्माको इंद्रियां ही नहीं हैं क्योंकि इन्द्रियां तो जड़ हैं अतः उनके द्वारा आत्मा विषयोंको भोगता है वह बात झूठ है।

तथा इन्द्रियोंकी ओर झुक कर विषय भोगनेका भाव होता है वह आस्रवबंध तत्त्व है, वह आत्मतत्त्व नहीं है। आत्मा विषयोंको नहीं भोगता है परन्तु हर्ष-शोकको भोगता है। उस हर्ष-शोकका शुद्ध जीवतत्त्वमें अभाव है अतः उसे आत्मा ही नहीं कहते हैं।

साधक जीवको स्वभाव सन्मुख दृष्टिकी मुख्यता है अतः वह स्वका भोक्ता है।

ग्यारहवें वचनमें कहा था कि विकारी परिणाम आत्मा नहीं है। परन्तु श्रद्धाज्ञानरूप निर्विकारी परिणाम सहित आत्माको ही आत्मा कहते हैं। उसे द्रव्य कर्मका ग्रहण नहीं होता है। जो अस्थिरताका रागद्वेष होता है उसे गौण करके स्वभावदृष्टिको मुख्य किया है। जो स्वभावकी ओर झुकता है उसे कर्मबंध नहीं है। उसी न्यायसे आत्मा ज्ञातादृष्टा शुद्धस्वभावी है। उसमें शांति, सुख और आनन्द है। अज्ञानी जीव इन्द्रिय सन्मुख होकर परपदार्थको तो नहीं भोगता है परन्तु 'परपदार्थको मैं भोगू' ऐसा भोक्ताका विकारी भाव वह आत्मा नहीं कहलाता है क्योंकि वह आत्माका त्रिकाली स्वरूप नहीं है। पर सन्मुख दृष्टि छोड़कर, स्व सन्मुख दृष्टि करके

अपने अतीन्द्रिय आनंद-ज्ञान आदिको भोगता है वही आत्मा है। सम्यग्दृष्टिको अल्प हास्य, रतिके भाव होने पर भी उस ओरकी दृष्टि नहीं है। परन्तु स्वभाव सन्मुख रहते हुए अपने ज्ञानसुखादिके भावको भोगनेकी ही दृष्टि मुख्यरूपसे होती है। अतः वह विकारी भावका भोक्ता नहीं होता है। ऐसे आत्माकी श्रद्धा करना वह धर्म है।

पुण्यका भोग वह चैतन्य शांत अमृतरसकी मिठाई छोड़कर भिखारीकी भांति झूठन खानेके समान है।

शब्द तो पुद्‌गलकी अवस्था है उसमें इष्ट-अनिष्टपना नहीं है; स्पर्श, रस, गंधयुक्त रूपी पदार्थोंमें अनुकूलता-प्रतिकूलता ही नहीं है। अज्ञानी जीव भोजनपानके पदार्थोंको इष्ट-अनिष्ट मानकर उनको भोगनेका भाव करता है परन्तु वह उसकी भ्रांति है। परवस्तुको भोगनेका भाव वह आत्माका स्वरूप नहीं है। लौकिकमें भी जो गृहस्थ होता है वह अपने घरमें उत्तम-उत्तम वस्तुएं खाता है परन्तु जो जीव चूरा अथवा झूठन खाता है उसे भिखारी कहा जाता है उसी प्रकार आत्माका भण्डार, ज्ञान, आनन्द, सुख आदि चैतन्य शक्तियोंसे अक्षय परिपूर्ण है, संयोग और पुण्य-पापकी रुचि छोड़कर स्वभावकी दृष्टि करके, जो जीव अपनी चैतन्य निधिके भण्डारको खोलता है, उसे उसमेंसे स्वभावकी निर्मल पर्यायरूप ताजी मिठाइयां समय समय पर मिलती हैं और वह उनको भोगता है। वह धर्मात्मा जीव चैतन्य-लक्ष्मीका स्वामी धनवान कहलाता है। परन्तु जो जीव अपने स्वरूपका भोग छोड़कर, शरीरको भोगूं, भोजनपान

के विकारीभावको भोगूं, दया दानादि परिणामको भोगनेकी इच्छा करता है—इस प्रकार पर लक्ष करता है वह जीव तीव्र आकुलता भोगता है। वह ताजी मिठाईयां छोड़कर भिखारीकी भांति झूठन खानेके समान है। वह आत्मस्वरूपकी लक्ष्मीका स्वामी नहीं है परन्तु भिखारी है। अर्थात् मिथ्यादृष्टि है, उसे धर्म नहीं होता है।

इस वचनमें अलिंग ग्रहणका अर्थ :—अ=नहीं, लिंग= इन्द्रियों द्वारा, ग्रहण=विषयोंका उपभोग। अर्थात् आत्माको इंद्रियों द्वारा विषयोंका उपभोग नहीं है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। यह नास्तिका कथन है। अस्तिसे आत्मा अपने ज्ञानं, दर्शन, सुख, वीर्य आदि निर्मल पर्यायोंका भोक्ता है—इस प्रकार निर्णय होता है। इस प्रकार आत्मा स्वज्ञेय है उसकी, जिस प्रकार है उसी प्रकार, श्रद्धा करना सम्यक्त्व और धर्मका कारण है।

अहो! महा समर्थ अमृतचन्द्राचार्य देवने एक अलिगग्रहण शब्दमें से वीस वचन निकाले हैं (प्रगट किये हैं) बाह्य—अभ्यन्तर निर्ग्रन्थ भावलिंगी मुनि छट्ठे-सातवें गुणस्थानमें झूलते थे। बाह्य नग्न दिगंबरदशा थी और अन्तरमें रागकी चिकनाईके स्वामित्व रहित रूखी दशा वर्तती थी। चैतन्यदशामें विश्राम करते करते चैतन्य उपवनमें रमण करते करते वीस वचन प्रगट किये हैं।

(१३) आत्मा जड़ प्राणोंसे नहीं जीवित रहता है इस प्रकार स्वज्ञेयको तू जान!

जिसको लिंग द्वारा अर्थात् मन अथवा इन्द्रिय आदि लक्षण द्वारा ग्रहण अर्थात् जीवत्वको धारण कर सकता नहीं है वह

अलिंगग्रहण है; इस प्रकार आत्मा शुक्र और आर्तव (रज) का अनुविधायी (अनुसरण करके होनेवाला) नहीं है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

पांच इन्द्रियां, तीन बल, श्वासोच्छ्वास और आयु—ये दस प्राण हैं, परन्तु जीव उनसे जीवित नहीं रहता है; क्योंकि वे दसों प्राण जड़ हैं और आत्मा तो शाश्वत चैतन्यप्राणवाला है। जड़ प्राणका आत्मामें अभाव है अतः आत्मा जड़ प्राणसे जीवित नहीं रहता है।

अज्ञानीकी प्राण संबंधी भ्रमणा

अज्ञानी मानता है कि श्वास और आयु टिकती है तब तक जीव जीवित रहता है, मन वचन काया हो तो टिकता है, पांचों इन्द्रियां ठीक रहें तो जीव टिकता है, वाणी ठीक बोली जाती हो तब तक जीव कहलाता है, मन निर्बल हो गया हो तो जीवसे कम कार्य होता है; परन्तु यह सब भ्रमणा है। क्योंकि मन, वचन, काया ये सर्व जड़ पदार्थ हैं आत्मा उनसे जीवित नहीं रहता है। तथा अज्ञानी मानता है कि—

पहला सुख निरोगी काया। दूजा सुख पुत्र चार पाया॥
तीजा सुख कुलवन्ती नार। चौथा सुख अन्न भण्डार॥

इस प्रकार अज्ञानी शरीर, पुत्र, स्त्री तथा अनाजमें सुख मानता है, वह महा भ्रमणा है। यहां तो पांच इन्द्रियां आदि जड़ पदार्थोंको निकाल दिया है, उनसे जीव जीवित नहीं रहता है तो दस प्राणसे प्रत्यक्ष पृथक् बाह्य पदार्थ पुत्र, स्त्री, अनाज आदि सुखके

कारण कहांसे होसकते हैं ? वे सुखका कारण ही नहीं हैं। अज्ञानी पैसेको भी प्राण मानते हैं वह सब स्थूल भ्रमणा है। दस प्राण तो अजीव तत्त्व है। अजीव तो जीवका ज्ञेय है अतः जीव ऐसे दस अजीव प्राणोंसे नहीं जीवित रहता है।

आत्मा चेतनाप्राणसे जीवित रहता है।

इस प्रकार आत्मा माता पिताके शुक्र और रजका अनुसरण करके होने वाला नहीं है और उनके द्वारा उत्पन्न नहीं होता है। आत्मा दस प्राणवाला नहीं है, आदि सब कथन नास्तिसे किया है तो आत्मा कौन है ? कैसा है ? आत्मा सदाकाल अपने चेतना प्राणसे जीवित रहता है और अपने परमबोध और आनन्दका अनुसरण करके होनेवाला है। अनादिकालसे तेरी दृष्टि दस प्राणपर है और तू मानता है कि जीव इनसे जीवित रहा है—तेरी उस दृष्टिको छोड़ दे और 'तू चैतन्य-प्राण स्वरूप है', ऐसी दृष्टि कर।

यहां अलिंगग्रहणका अर्थ :—अ=नहीं, लिंग=इन्द्रिय, मन, ग्रहण=जीवत्वको धारण कर रखना। अर्थात आत्मा इन्द्रिय और मन आदि लक्षण द्वारा जीवत्वको नहीं धारण करता है—इस प्रकार भाव समझकर स्वज्ञेयकी यथार्थ श्रद्धा-ज्ञान करना वह धर्मका कारण है।

(१४) आत्मा जड़ इन्द्रियोंके आकारको ग्रहण नहीं करता है इसप्रकार स्वज्ञेयको जान।

जिसको लिंगका अर्थात् मेहनाकारका (पुरुषादिकी इंद्रियके

आकारका) ग्रहण नहीं है वह अलिगग्रहण है। इस प्रकार आत्मा लौकिक साधनमात्र नहीं है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

जो इस शरीरकी इन्द्रियोंका आकार दिखाई देता है जीवने उसे ग्रहण नहीं किया है। जो पुरुषकी इन्द्रियकी, स्त्रीकी इंद्रियकी, नपुंसककी इंन्द्रियकी आकृतियां दिखाई देती हैं वे तो सब पुद्गलकी अवस्था हैं। उन आकृतियोंका आत्मामें अभाव है और उस आकारमें आत्माका अभाव है। जिस वस्तुका जिसमें अभाव होता है उस अभाव वस्तुका ग्रहण हो इस प्रकार बनही नहीं सकता है अतः आत्मा इन्द्रियके आकारका ग्रहण नहीं करता है।

अज्ञानी जीव आत्माको लौकिक साधनमात्र मानता है।

अज्ञानीमाता कहती है कि मैंने पुत्रको जन्म दिया, पुरुष कहता है कि मेरे कारण पुत्रका जन्म हुआ। पुत्रके शरीरमें पुत्रके आत्माका भी अभाव है तो पुत्रके शरीरके आकारमें माता पिता निमित्त हों, ऐसा कैसे बने ? तथा आत्मामें इन्द्रियोंका अभाव है, तो निमित्त होनेका प्रश्न ही नहीं रहता है। तो भी पुत्रका जन्म होने पर पिता विजयी हुआ और पुत्रीका जन्म होने पर माता विजयी हुई ······· अज्ञानी भ्रमणा से इस प्रकार मानता है।

आत्मा लौकिक साधन मात्र नहीं है।

इन्द्रियोंकी समय समयकी पर्यायको आत्माने ग्रहण ही नहीं किया है। आदिमें माता पिता थे तो वंश चलता रहा, ऐसा मानना वह भ्रमणा है। परकी पर्याय कौन कर सकता है? कोई नहीं कर सकता है। शरीरके आकारकी अवस्था उसके कारण और इंद्रियोंकी

अवस्था उनके कारण होती है। आत्मा उनको ग्रहण नहीं करता है। परज्ञेयकी आकृतिका आत्मामें अभाव है। अतः आत्मा कुटुम्बका वंश रखे, वैसा अथवा लौकिक साधनमात्र है ही नहीं।

आत्मा वीतरागी पर्याय प्रगट करनेमें लोकोत्तर साधन है।

तो आत्मा कैसा है? लौकिक साधन नहीं है, परन्तु लोकोत्तर साधन है। आत्मा चैतन्य ज्ञाताद्रष्टा शुद्ध स्वभावी है। वह सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी निर्मल पर्यायका (प्रजाका) उत्पादक है परन्तु संसारकी प्रजाका उत्पादक नहीं है। इस प्रकार आत्मा वीतरागी पर्यायको जन्म देता है। ऐसी वीतराग पर्यायका साधन त्रिकाली शुद्ध आत्मा हुआ अतः उसे लोकोत्तर साधन कहते हैं।

यहां अलिंगग्रहणका अर्थ : अ=नहीं, लिंग=पुरुषादिकी इन्द्रियका आकार, ग्रहण=पकड़ना। आत्मा पुरुषादिकी इंद्रियके आकारको ग्रहण नहीं करता है अतः आत्मा लौकिक साधनमात्र नहीं है। आचार्यभगवान कहते हैं कि तू जड़ इन्द्रियोंका आश्रय छोड़ और चैतन्य ज्ञाताद्रष्टा शुद्ध चिदानन्द स्वरूप है उसकी श्रद्धा-ज्ञान करके, उसमें स्थिरता कर तो तेरेमें अनंतज्ञान, अनंतदर्शन, अनंतसुख, अनंतवीर्यरूप पर्याय प्रगट होगी। अतः आत्मा लोकोत्तर साधन है।

इस प्रकार आत्मा लौकिक साधनमात्र नहीं है, परन्तु लोकोत्तर साधन है; इस प्रकार स्वज्ञेयका ज्ञान-श्रद्धान करना वह धर्मका कारण है।

(१५) आत्मा लोक व्याप्तिवाला नहीं है इस प्रकार स्वज्ञेयको तू जान।

लिंग अर्थात् अमेहनाकार द्वारा, जिसका ग्रहण अर्थात् लोकमें व्याप्त होना नहीं है वह अलिंग ग्रहण है; इस प्रकार आत्मा पाखंडियोंको प्रसिद्ध साधनरूप आकारवाला—लोक व्याप्तिवाला नहीं है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

अन्यमतवाला आत्माको लोकव्याप्तिवाला मानता है।

अमुक लोगोंका मानना है कि आत्मा विभावसे पृथक् अर्थात् मुक्त होता है तब सम्पूर्ण लोक प्रमाण व्याप्त हो जाता है। जिस प्रकार पक्षीके पंख टूट जाने पर पक्षी वहीं का वहीं पड़ा रहता है और हिलता चलता नहीं है उसी प्रकार इस आत्माके पुण्य-पापरूपी पंख टूट जाने पर वह लोकमें व्याप्त होकर पड़ा रहता है, वह अपने ऊर्ध्वगमन स्वभावसे व्यवहारसे ऊंचाई पर नहीं जाता है, इस प्रकार अनेक पाखंडी मानते हैं। अशुद्ध होता है तब तक मर्यादित क्षेत्रमें रहता है परन्तु शुद्ध होनेके पश्चात् अमर्यादित क्षेत्र प्रमाण रहता है इस प्रकार पाखण्डी लोक मानते हैं, परन्तु वह बात झूठ है।

आत्मा अपने असंख्य प्रदेशात्मक क्षेत्र में ही रहता है।

प्रत्येक आत्मा जिस प्रकार संसारमें प्रत्येक शरीरमें भिन्न-भिन्न रहता है उसी प्रकार मुक्त होनेके पश्चात् भी भिन्न-भिन्न रहता है। वह लोकमें व्याप्त नहीं होता है, अपने असंख्य प्रदेश को छोड़कर लोकमें व्याप्त होना यह उसका स्वभाव नहीं है। आत्मा

शुद्ध होनेके पश्चात् अपने अंतिम शरीरप्रमाणसे किंचित न्यून अपने आकारमें—निश्चय से अपने असंख्य प्रदेशमें रहता है और उर्ध्वगमन स्वभावके कारण व्यवहारसे लोकके अग्रभागमें विराजता है।

अन्य मतवाला मानता है कि सब मिलकर एक आत्मा है और मोक्ष होनेके बाद आत्मा भिन्न नहीं रहता है, परन्तु वह मान्यता झूठी है। सब मिलकर एक आत्मा हो जाये तो अपने शुद्ध स्वभावका स्वतन्त्र भोग नहीं रह सकता है। प्रत्येक आत्मा दर्शन, ज्ञान, चारित्र आदि अनंत गुणोंका पिन्ड है, प्रत्येक शरीर आश्रित भी भिन्न भिन्न हैं। इस प्रकार अनंत आत्मा हैं, सब मिलकर एक आत्मा नहीं है। तथा शुद्ध होने के पश्चात् निश्चयसे तो अपने असंख्य प्रदेशमें रहता है और व्यवहार से ऊर्ध्वगमन स्वभावके कारण लोकके अग्रभाग में विराजता है। अत: अन्य मतवालेकी मान्यता वस्तुस्वरूपसे अत्यन्त विपरीत है। जीव अपने असंख्य प्रदेशको कभीभी नहीं छोड़ता है और लोकमें प्रसर कर परमें व्याप्त नहीं होता है—इसका नाम अनेकांत है।

यहां अलिग ग्रहणका अर्थ:—अ = नहीं, लिग = अमेहनाकार द्वारा, ग्रहण = लोकमें व्याप्ति होना। अर्थात् आत्मा लोक व्याप्ति-वाला नहीं है, इस प्रकार तू तेरे स्वज्ञेयको जान। इस प्रकार अपने आत्माको, 'लोक व्याप्तिवाला नहीं है परन्तु असंख्यप्रदेशात्मक आकारमें निश्चित रहता है'—इस प्रकार श्रद्धा और ज्ञान करना धर्मका कारण है।

(१६) आत्मा द्रव्यसे अथवा भावसे स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक नहीं है इस प्रकार तू जान।

जिसको लिंगोंका अर्थात् स्त्री, पुरुष और नपुंसक वेदोंका ग्रहण नहीं है वह अलिंग ग्रहण है। इस प्रकार आत्मा द्रव्यसे और भावसे स्त्री, पुरुष और नपुंसक नहीं है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

शरीरका आत्मामें अभाव है।

चौदहवें वचनमें कहा था कि पुरुषादिकी इन्द्रियका आकार आत्मामें नहीं है। यहां कहते हैं कि स्त्री, पुरुष अथवा नपुंसक शरीरका आत्मामें अभाव है क्योंकि वह जड़ है, अजीव तत्त्व है, और आत्मा तो जीव तत्त्व है।

वेदका विकारी भाव त्रिकाली स्वभावमें नहीं है।

तथा अपना स्वभाव आनंद स्वरूप है उसे भोगनेसे च्युत होकर पर शरीरको भोगनेका भाव होता है। वह भाववेदरूप अशुभभाव है, वह पापतत्त्व है। आत्मा जीवतत्त्व है अतः उस भाववेदका त्रिकाली आत्म स्वभावमें अभाव है। इस प्रकार आत्मा द्रव्य तथा भाव वेदोंसे रहित है। परन्तु कोई कहता है कि पुरुष, स्त्री आदिका शरीर द्रव्यवेद है और आत्मामें होते हुए विकारी वेदनाभाव भाववेद हैं, ऐसा बिल्कुल ही नहीं है, वह तो मात्र भ्रम है—वह कथन तो झूठा है। यहां तो कहते हैं कि संसार अवस्थामें अपने स्वभावसे च्युत होता है उस समय किसी भी भाववेदका उदय तो है और बाह्यमें कोई भी द्रव्यवेद तो है; परन्तु वह आत्माके

त्रिकालीस्वभावमें नहीं है इस प्रकार उस द्रव्य तथा भाववेदका स्वभावदृष्टिके द्वारा निषेध कराते हैं।

आत्मा अवेदी है और उसके लक्षसे धर्म होता है।

आत्मा अवेदी है इस प्रकार सच्चा ज्ञान कब किया कहलाता है? द्रव्यवेद जो अजीव है उसके सन्मुख देखनेसे सम्यक्त्व होगा? अथवा भाववेद पापतत्त्व है उसके सन्मुख देखनेसे सम्यक् प्रतीति होगी? नहीं। आत्मा भाव वेद और द्रव्यवेद रहित अवेदी है, अपने ज्ञाताद्दष्टा शुद्ध आनंदका भोग करनेवाला है इस प्रकार स्वदृष्टि करे और परकी ओरकी दृष्टि छोड़े तो सम्यग्दर्शन होता है और धर्म होता है। अपना आत्मा अवेदी है इस प्रकार श्रद्धा-ज्ञान करनेके पश्चात् द्रव्यवेदका, जोकि अजीव हैं, उसका ज्ञान करे तो व्यवहारसे उसका अजीव संबंधी ज्ञान सत्य है। अपना आत्मा अवेदी है इस प्रकार श्रद्धा ज्ञान करनेके पश्चात् भाववेद अपना अशुभ-परिणाम है और पापतत्त्व है इस प्रकार ज्ञान करे तो व्यवहारसे उसका पाप तत्त्व सम्बन्धी ज्ञान सत्य है। परन्तु जीवतत्त्वके यथार्थ ज्ञान बिना अन्य तत्त्वोंका ज्ञान सच्चा नहीं होता है।

अज्ञानी जीव परको अपना आधार मानता है।

अज्ञानी जीवोंको अपने अवेदी आत्माका भान नहीं है अतः संयोगों तथा विकारीभाव पर उसकी दृष्टि जाती है। स्त्रियां कहती हैं कि हम क्या करें? हम तो अबला हैं अतः किसीके आधार बिना जीवित नहीं रह सकती हैं। पुरुष कहते हैं कि हम बहुतोंका पालनपोषण (निर्वाह) करते हैं, स्त्री, कुटुम्ब, बाल बच्चोंको हमारा

आधार है। नपुंसक कहता है कि हम तो जन्मसे ही नपुंसक हैं, अतः हम क्या कर सकते हैं ? इस प्रकार वेदकी संयोगीदृष्टिके कारण पराधीनताकी कल्पना करते हैं उनको कभी भी धर्म नहीं होता है।

नारकीमें द्रव्य और भाववेद दोनों नपुंसक होनेपर भी सम्यग्दर्शन प्राप्त कर सकता है।

ज्ञानी कहते हैं कि इस संयोगदृष्टिको छोड़। स्त्रीका, पुरुष का अथवा नपुंसकका शरीर ही तेरा नहीं है। जब शरीरही तेरा नहीं है तो शरीरके निर्वाहके लिये तुझे पर सन्मुख देखनेकी क्या आवश्यकता है ? तू तो तेरे ज्ञान, दर्शन आदि स्व शक्तिके आधारसे जीवित है और जो भाववेदके परिणाम है वह तो पाप तत्त्व हैं, वह तेरा जीवतत्त्व नहीं है; अतः उसकी दृष्टि छोड़। द्रव्यवेद और भाववेद सम्यग्दर्शन अथवा धर्मको नहीं रोकता है। नारकी जीव द्रव्य और भावसे नपुंसकवेदी है तो भी आत्मा त्रिकाल अकषाय-अवेदी है ऐसा भान करनेसे पुरुषार्थी नारकी जीव भी बहुत प्रतिकूल संयोगोंमें होते हुए भी सम्यग्दर्शन रूप धर्मको प्राप्त कर सकता है, तो तू यहां मनुष्यत्वमें धर्म प्राप्त न कर सके ऐसा नहीं बनता है। अतः वेदोंकी दृष्टि छोड़ और अवेदी आत्माकी स्वसन्मुख दृष्टि कर— इस प्रकार कहनेका आशय है।

इस वचनमें अलिंग ग्रहणका अर्थ : अ=नहीं, लिंग=स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेद, ग्रहण=ग्रहण करना। जिसको स्त्री, पुरुष और नपुंसकवेद द्रव्य और भावसे नहीं है अर्थात् आत्मा

अवेदी है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। आत्मा तो अपने ज्ञान, दर्शन, सुख आदिका वेदक है, परन्तु शरीर तथा विकारी भावका वेदक नहीं है—इस प्रकार तेरा आत्मा तेरा स्वज्ञेय है उसको तू जान।

इस प्रमाणसे स्वज्ञेय ऐसे आत्माको श्रद्धा और ज्ञानमें लेना वह सम्यग्दर्शनका कारण है।

[माघ कृष्णा ८, गुरुवार]

यह आत्मा जिस प्रकार है उसी प्रकार उसके असली स्वरूपको जाने और माने तो धर्म होता है। उसका अर्थ इस प्रकार है—उसने अपना यथार्थस्वरूप अनंतकालसे एक सेकन्ड मात्र भी नहीं जाना है; आत्मा जैसा है वैसा नहीं मान कर उसकी विपरीत मान्यता की है। अतः हे जीव ! आत्माको अलिंग ग्रहण जान। किसी भी इन्द्रियके द्वारा परको जाने ऐसा आत्मा नहीं है। इंद्रियों द्वारा मुझे ज्ञान होता है ऐसी अनादिसे मान्यता की है। ऐसी मान्यतारूप भ्रम वर्तमान अवस्थामें है, इन्द्रियां भी है इस प्रकार स्वीकार करके यह दशा वह आत्मा नहीं है इस प्रकार कहा है। तथा वह इन्द्रियोंसे ज्ञात हो ऐसा नहीं है, परन्तु अतीन्द्रिय ज्ञान-स्वभावी है ऐसा कहा है। इन्द्रियोंसे ज्ञान होता है ऐसा भ्रम है, परन्तु आत्मा यथार्थतया इन्द्रियोंसे स्व-परको नहीं जानता है। सब वचनोंमें व्यवहार बतलाकर उसका निषेध करके ज्ञान कराया है।

आत्मा द्रव्य तथा भाववेदसे रहित है।

सोलहवां वचन फिरसे कहा जाता है। आत्माको लिंगोंका अर्थात् स्त्री पुरुष वेदोंका ग्रहण नहीं है, स्त्री-पुरुषोंका आकार आत्मा में नहीं है। व्यवहारसे शरीर-स्त्री-पुरुषके आकाररूप संयोग होते हैं किन्तु वे आत्मामें नहीं हैं। स्त्री अथवा पुरुषवेदका भाव औपाधिक-भाव है परन्तु वह आत्माका त्रिकाली स्वरूप नहीं है, वह एकसमय पर्यंतकी अवस्था है; अतः ज्ञातादृष्टा शुद्ध स्वभावको छोड़कर आत्मा को इस जितना मानना वह पर्यायबुद्धि है; भ्रमणा है, अज्ञान है। पुरुषादिके आकारको आत्मा मानना वह जड़को जीव मानने जैसा है और भाववेदको आत्मा मानना वह पापतत्त्वको जीवतत्त्व मानने जैसा है। अजीवको जीव मानना तथा पापको जीव मानना वह अधर्म है। परन्तु शरीर तथा भाववेदसे रहित आत्मा शुद्ध चिदानन्द स्वरूप है ऐसी श्रद्धा-ज्ञान करना वह धर्म है। यह जीवनकला है। सुखी जीवन कैसे जीना उसकी यह कुंजी है।

(१७) आत्मा बाह्य धर्मचिह्नोंको ग्रहण नहीं करता है इसप्रकार स्वज्ञेयको तू जान।

लिंगोंका अर्थात् धर्मचिह्नोंका ग्रहण जिसको नहीं है वह अलिंगग्रहण है; इस प्रकार आत्माको बहिरंग (बाह्य) यतिलिंगोंका अभाव है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

शरीरकी नग्न दिगम्बर दशा वह धर्मका चिह्न नहीं है।

१. आत्मा शुद्ध चिदानन्द स्वरूप है ऐसा भान होनेके पश्चात् स्वभावमें विशेष स्थिरता होना वह अंतरमुनिदशा है और

अंतर निग्रंथदशा प्रगट होती है तब बाह्यमें वस्त्र आदि नहीं होते हैं अर्थात् शरीरकी नग्न दिगम्बर दशा होती है तथा मयूरपींछी और कमंडल होता है। बाह्यमें नग्नदशा ही नहीं होती है, इस प्रकार कोई मानता है तो वह स्थूल भूल है।

२. परन्तु बाह्य निमित्त–मयूरपीछी आदि तथा शरीरकी नग्नदशा आदिका आत्मामें अभाव है। आत्मा उन्हें ग्रहण नहीं करता है क्योंकि वे जड़ पदार्थ हैं, वे उनके कारण होते हैं। आत्मा उनके उठाने–रखनेकी क्रिया नहीं कर सकता है।

३. तथा वह नग्नदशा, मयूरपिच्छ, कमंडलु आदि हैं अतः मुनिका मुनिपना रहता है ऐसा भी नहीं है, क्योंकि अंतर भावलिंगीदशा वह मुनिपना है।

इस प्रमाणसे व्यवहारसे बाह्य संयोगोंका ज्ञान करा कर, निश्चयमें उस व्यवहारका अभाव वर्तता है, इस प्रकार कहते हैं। 'मैं शरीरकी अवस्था कर सकता हूँ, दिगम्बर हूं, मुनिपनेकी अवस्था जितना ही हूँ', इसप्रकार मुनि कभी भी नहीं मानता है; तो भी अंतर मुनिदशा वर्तती है तब शरीरकी अवस्था शरीरके कारण नग्न होती है।

शरीरकी नग्नदशा आत्मासे होती है इस प्रकार मानने वाला जीव मुनि नहीं है परन्तु मिथ्यादृष्टि है।

जो जीव इसप्रकार मानता है कि शरीरकी नग्नदशाको मैंने किया है, मैंने इच्छासे वस्त्रका त्याग किया—इस प्रकार शरीर और वस्त्रकी क्रियाका जो स्वामी बनता है वह स्थूल मिथ्यादृष्टि

है। अंतरंगमें तीन प्रकारकी कषाय रहित वीतरागी रमणता हो तब जड़की नग्नदशा उसके कारण होती है; जिसको ऐसा भान नहीं है और पर पदार्थोंकी क्रिया होती है, उसका कर्त्ता-हर्त्ता होता है वह मूढ़ है, अज्ञानी है, उसे आत्माके धर्मकी खबर नहीं है। परवस्तु के ग्रहणत्यागका भावही अधर्मभाव है। तब कोई प्रश्न करता है कि बाह्य लिंगकी धर्मके लिये आवश्यकता नहीं है तो चाहे जैसा बाह्य लिंग हो तो भी धर्म हो सकता है तो वह मान्यता भी बहुत भ्रमपूर्ण है। चाहे जो लिंग हो और केवलज्ञान हो तथा मुनि होकर वस्त्र पात्र रखे और उस दशामें भी केवलज्ञान प्राप्त करे इस प्रकार माननेवाला बहुत स्थूल भूलमें है। वह तो बाह्यसे भी मुनि नहीं है। पहले व्यवहार सिद्ध किया है। उतना व्यवहार स्वीकार करना पड़ेगा कि मुनिदशा होती है तब नग्नदशा ही होती है और बाह्य उपकरणके रूपमें मयूरपिच्छ, कमंडलुके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं होता है। इतना स्वीकार करनेके पश्चात् यहां तो इस प्रकार कहते हैं कि इनसे आत्मा नहीं पहिचाना जाता है।

यहां अलिंग ग्रहणका अर्थ : अ=नहीं, लिंग=बाह्य धर्म चिह्न, ग्रहण=ग्रहण। अर्थात् आत्मा बाह्य धर्म चिह्नोंको ग्रहण नहीं करता है, परन्तु शुद्ध चिदानन्द स्वभावको ग्रहण करता है वैसा है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है। इस प्रकार तेरे स्वज्ञेयको तू जान और श्रद्धा कर, इस प्रकार आचार्यभगवान कहते हैं। और वह सम्यग्दर्शनका कारण है।

(१८) तेरा अभेद आत्मा गुणभेदका स्पर्श नहीं करता है इस प्रकार स्वज्ञेयको तू जान ।

जिसको लिंग अर्थात् गुण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थविबोध (पदार्थज्ञान) नहीं है वह अलिंग ग्रहण है; इस प्रकार आत्मा गुण विशेषसे आलिंगित नहीं है ऐसा शुद्ध द्रव्य है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है ।

आत्मा वस्तु है । वह अनंत गुणका पिंड है । वह मात्र ज्ञानगुणवाला नहीं है । अभेद आत्मा गुणके भेदको स्पर्श करे वैसा नहीं है ।

१. आत्मा मन, वाणी, देहका स्पर्श नहीं करता है क्योंकि वह तो जड़ है, उसका आत्मामें अभाव है । जो वस्तु पृथक् हो उसे किस प्रकार स्पर्श करे ? पृथक्को स्पर्श करे तो आत्मा और शरीर एक हो जाय परन्तु इस प्रकार कभी नहीं बनता है ।

२. आत्मा जड़कर्म—ज्ञानावरणीय आदिको स्पर्श नहीं करता है क्योंकि वह सब रूपी है, उसका अरूपी आत्मामें अभाव है । अज्ञानीका आत्मा भी किसी दिन कर्मको स्पर्श ही नहीं करता है क्योंकि आत्माको और कर्मको अत्यन्त अभाव वर्तता है ।

३. अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभावसे च्युत होकर अपनी एक समयकी पर्यायमें पुण्य-पापके विकारी भाव होते हैं, त्रिकाली स्वभाव ने उनको कभी स्पर्श ही नहीं किया है । सम्पूर्ण वस्तु यदि विकारको स्पर्श करे तो त्रिकालीस्वभाव विकारमय हो जाये और वैसा होनेसे विकार रहित होनेका अवसर कभी भी प्राप्त नहीं हो ।

४. यहां तो इससे भी विशेष बातका कथन है। आत्मामें ज्ञानादि अनंत गुण हैं। ज्ञानगुण, दर्शनगुण आदि गुणभेद आत्मामें होने पर भी अनंत गुणोंका एक पिंडरूप आत्मा गुणभेदका स्पर्श नहीं करता है। 'मैं ज्ञानका धारक हूं और ज्ञान मेरा गुण है' ऐसे गुणगुणीके भेदको अभेदआत्मा स्वीकार नहीं करता है। अभेद आत्मा भेदका स्पर्श करे तो वह भेदरूप हो जाये, भेदरूप होने पर अभेद होनेका प्रसंग कभी भी प्राप्त नहीं हो और अभेद माने बिना कभी भी धर्म नहीं होता है।

देखो, यह सम्यग्दर्शनका विषय कैसा होता है उसका कथन चलता है। सम्यग्दर्शनका विषय आत्मा अभेद एकरूप कैसा है उसे यथार्थ नहीं जाने तो उस ज्ञान बिना बालतप और बालव्रत कार्यकारी नहीं होते हैं। त्रिलोकनाथ तीर्थंकर देवाधिदेवने अपने केवलज्ञानमें वस्तुका स्वरूप जैसा देखा है, वैसा ही उनकी वाणी द्वारा प्रगट हुआ और उसीके अनुसार श्री कुन्दकुन्दाचार्य भगवानने वस्तुस्वरूपको जानकर—अनुभवकर यह महान रचना की है। उसे माननेसे सम्यग्दर्शन होता है। लोग बाह्यमें 'यह करूं और वह करूं' इस प्रकार बाह्य पदार्थोंमें और क्रियामें धर्म मानता है। जिसको वस्तुस्वभावका ज्ञान नहीं है उसे धर्म कभी भी नहीं होता है।

सम्यग्दर्शनका विषय—शुद्ध एकाकार, अभेद आत्मा है।

सम्यग्दर्शनका विषयभूत आत्मा कैसा है? वह जैसा है वैसा जाने तो धर्म हो। कोई जीव शक्करको अफीम माने तो क्या उसका शक्करका ज्ञान सच्चा कहलाता है? अथवा शक्कर और

अफीम दोनोंको एक ही पदार्थ माने तो उसका शक्करका ज्ञान सच्चा कहलाता है ? और शक्करके ऊपर जो मैल है उसको शक्करका स्वरूप माने तो सच्चा ज्ञान कहलाता है ? उत्तर—नहीं। वह सच्चा ज्ञान नहीं कहलाता है। शक्कर शक्कर है, अफीम नहीं है; दोनों भिन्न हैं। शक्करके उपरका मैल भी शक्करका स्वरूप नहीं है। उसी प्रकार शरीरको आत्मा माने तो आत्माका ज्ञान सच्चा नहीं होता है, आत्मा और शरीर दोनोंको एक माने तो भी आत्माका ज्ञान सच्चा नहीं होता है, आत्माकी पर्यायमें क्षणिक विकार है उसे अपना त्रिकाली स्वरूप माने तोभी आत्माका ज्ञान सच्चा नहीं होता है। शरीर-मन-वाणी रहित, विकल्प रहित और गुणभेदरहित एकाकार अभेद आत्मा सम्यग्दर्शनका विषय है।

यहां बीसों वचनोंमें पहले व्यवहार सिद्ध करते जाते हैं और उसके पश्चात् व्यवहारका निषेध करके निश्चयका ज्ञान कराया है। मात्र व्यवहारको स्वीकार करे और उसमें रुक जाये तो भी धर्म नहीं होता है।

गुणभेद होने पर भी आत्मा गुणभेदको स्पर्श नहीं करता है।

यहां १८ वें वचनमें व्यवहार सिद्ध करके निषेध कराया है, जो वस्तु हो उसका निषेध किया जाता है परन्तु जो न हो उसका क्या निषेध हो ?

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, स्वच्छत्व, विभुत्व आदि आत्मामें अनंत गुण हैं। कोई मानता हो कि ऐसा गुणभेद ही नहीं है तो उसको व्यवहार श्रद्धा भी नहीं है। एक गुण अन्य गुणरूप नहीं

है—इस प्रकार गुणभेद है, तोभी उसमें जीव रुकता है तो धर्म नहीं होता है। गुणभेदमें आत्मा एकाकार हो तो आत्माका एकत्व भिन्न नहीं रहता है। आत्मा त्रिकाली गुणोंका पिंड है, वह सामान्य है और दर्शन, ज्ञान आदिगुण वे विशेष हैं। सामान्य विशेषको स्पर्श नहीं करता है, सामान्य सामान्यमें है, विशेष विशेषमें है। सामान्यमें विशेष नहीं है और विशेषमें सामान्य नहीं है। सामान्य ऐसा आत्मा विशेष ऐसा ज्ञानगुणको स्पर्श करे तो सामान्य और विशेष एक हो जायें, दोनों पृथक् नहीं रहें। अनंतगुणोंका समूहरूप एकाकार आत्मा मात्र ज्ञानगुणको स्पर्श नहीं करता है। यहां शुद्ध द्रव्यकी श्रद्धा कराई है। शरीर रहित, कर्म रहित, विकार रहित, गुणभेद रहित ऐसे अभेद शुद्ध द्रव्यकी दृष्टि करानी है।

शुद्ध द्रव्य एकरूप है, यदि वह गुणभेदका स्पर्श करे तो द्रव्य शुद्ध नहीं रहता है। गुणभेद है उसका निषेध कराते हैं। गुणभेद बिलकुल नहीं होता तो निषेध करना क्या? सामान्य विशेषमें व्याप्त हो जाये तो सामान्य पदार्थ एकरूप नहीं रहता अतः यहां कहते हैं कि सामान्य स्वभावने ज्ञानगुणको स्पर्श ही नहीं किया है। यह ज्ञानगुण है और आत्मा ज्ञानगुणका धारक है ऐसे भेदके विकल्प से धर्म नहीं होता है, परन्तु आत्मा अखंड ज्ञाता एकाकार है उसकी श्रद्धा करनेसे धर्म होता है।

यहां अलिंगग्रहणका अर्थ : अ = नहीं, लिंग = गुण, ग्रहण = पदार्थज्ञान वह जिसको नहीं है ऐसा आत्मा है अर्थात् आत्मा गुण विशेषसे नहीं स्पर्शित ऐसा शुद्ध द्रव्य है। इस वचनमें ज्ञानगुण और

ज्ञानका धारक आत्मा गुणी ऐसे गुणगुणीभेदका निषेध कराकर एकाकार आत्माकी श्रद्धा कराते हैं।

गुणभेद रहित आत्मा तेरा स्वज्ञेय है; इस प्रकार तू जान— इस प्रकार आचार्य भगवान कहते हैं। इस प्रकार स्वज्ञेयमें श्रद्धा-ज्ञान करना वह धर्म है।

(१९) तेरा नित्य आत्मा अनित्य निर्मल पर्यायको भी स्पर्श नहीं करता है—इस प्रकार स्वज्ञेयको जान।

लिंग अर्थात् पर्याय ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध विशेष वह जिसको नहीं है वह अलिंग ग्रहण है, इस प्रकार आत्मा पर्याय विशेषसे नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध द्रव्य है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

निर्मल पर्यायसे नहीं स्पर्शित आत्मा शुद्ध द्रव्य है। १८ वें वचनमें 'अर्थावबोध' शब्द दिया था और कहा था कि गुणभेद होने पर भी अभेद आत्मा गुणभेदका स्पर्श नहीं करता है इस प्रकार गुण-भेदका निषेध कराकर अभेद आत्माकी श्रद्धा कराई थी। यहां ऐसा कहते हैं कि साधकदशामें सम्यग्ज्ञानकी निर्मल पर्यायको अथवा केवलज्ञानके समय केवलज्ञानकी पूर्ण निर्मल पर्यायका आत्मा चुम्बन नहीं करता है, स्पर्श नहीं करता है। द्रव्य पर्याय जितना ही नहीं है इसप्रकार कहकर पर्याय-अंशका लक्ष छुड़ाना है और अंशी द्रव्यकी श्रद्धा करानी है।

आत्मा सामान्य एकरूप है वह समयसमयकी पर्यायमय हो जाये तो द्रव्य और पर्याय दोनों भिन्न नहीं रहते हैं और जिसप्रकार

पर्याय क्षणिक है उसी प्रकार द्रव्य भी क्षणिक हो जाये, अर्थात् द्रव्य अनादि अनंत नहीं रहे।

प्रवाहरूपसे तूने अनादिके विकारी परिणाम किये हैं उनको तो आत्माने कभी स्पर्श नहीं किया है, उनके साथ एकरूप नहीं हुआ है। अज्ञानी भले ही मानता हो कि मैं सम्पूर्ण विकारी हो गया परन्तु उसका आत्मा भी विपरीत मान्यताके समय द्रव्य दृष्टिसे तो विकार रहित ही है क्योंकि यदि शुद्ध द्रव्य विकारमय हो जाये तो विकार रहित होनेका कभी प्रसंग ही नहीं बने। यहाँ तो यह बात ही नहीं है।

यहां तो इससे भी आगेकी बात कहनी है कि आत्मा ज्ञाता दृष्टा शुद्ध स्वभावी है उसकी श्रद्धा-ज्ञान करनेसे जो निर्मल पर्याय प्रगट होती है उसी पर्यायको भी आत्मा स्पर्श नहीं करता है, आलिंगन नहीं करता है, परन्तु आत्मा नित्य शुद्ध द्रव्य है। ऐसा तेरा ज्ञेय स्वभाव है। जैसा ज्ञेयस्वभाव है वैसा जाने तो सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान प्रगट हो। ऐसी अपूर्व बात अनंतकालमें सुननेको मिली है। यथार्थ समझ करके सम्यक् प्रतीति करे तो धर्म हो, परन्तु जिसको यह बात सुननेको भी नहीं मिली है उसे तो धर्म कहांसे होगा? नहीं ही होगा।

प्रश्न—द्रव्य पर्यायको स्पर्श नहीं करता है इस प्रकार कहते हो तो क्या द्रव्य पर्याय बिनाका होगा?

उत्तर—द्रव्य सामान्य निश्चयसे तो पर्याय बिना का है। द्रव्य सामान्य और पर्याय विशेष-दोनों मिलकर सम्पूर्ण द्रव्य होता

है वैसा द्रव्यका अर्थ यहां नहीं लेना। यहां शुद्ध द्रव्यका अर्थ सामान्य सदृश एकरूप त्रिकाली स्वभाव लेना। द्रव्य वह सामान्य है, पर्याय वह विशेष है। सामान्यमें विशेपका अभाव है। अभाव कहते ही 'त्रिकाली स्वभाव एक समयकी पर्यायको स्पर्श नहीं करता है' ऐसा निर्णय होता है।

शुद्ध स्वभावी द्रव्य वह नित्य है और निर्मल पर्याय वह एक समयकी है, अनित्य है। नित्य ऐसा शुद्ध द्रव्य अनित्य ऐसे सम्यग्ज्ञान की अथवा केवलज्ञानकी पर्यायको निश्चयसे स्पर्श करे तो द्रव्य नित्य नहीं रहता है अर्थात् द्रव्य क्षणिक होनेका प्रसंग आता है; परन्तु वैसा नहीं बनता है।

अनित्य पर्यायका लक्ष छोड़ और नित्य द्रव्यका लक्ष कर

जिस प्रकार १८ वें वचनमें कहा था कि अभेद आत्मामें भेदका अभाव है अतः अभेद आत्मा गुणभेदको स्पर्श नहीं करता है, उसी प्रकार यहां नित्य ज्ञानानंद शुद्ध स्वभावी आत्मा त्रिकाली है वह एक समयकी अनित्य निर्मल पर्यायका स्पर्श नहीं करता है—इस प्रकार कहकर जो निर्मल पर्याय अनित्य है उसपरसे लक्ष छुड़ाकर जो नित्य द्रव्य शुद्ध एकरूप अभेद पड़ा है उस पर दृष्टि करानेका प्रयोजन है। तेरा आत्मा निर्मल पर्याय जितना नहीं है, तू तो त्रिकाली शुद्ध है। उस पर लक्ष करेगा तो सम्यग्दर्शन होगा और नित्यके लक्षसे ही निर्मलता बढ़कर परिपूर्ण निर्मलता होगी इस प्रकार कहनेका आशय (भाव) है।

यहां अलिंग ग्रहणका अर्थ : अ=नहीं, लिंग=पर्याय,

ग्रहण=ज्ञानकी निर्मल पर्याय—वह जिसको नहीं है अर्थात् शुद्ध द्रव्य ज्ञानकी एकसमयकी निर्मल पर्याय जितना ही नहीं है परन्तु नित्य सदृश सामान्य एकरूप है इस प्रकार तू स्वज्ञेयको जान। इस प्रकार स्वज्ञेयकी श्रद्धा ज्ञान करना धर्मका कारण है।

(२०) शुद्ध पर्यायकी अनुभूति वही आत्मा है—इस प्रकार स्वज्ञेयको तू जान।

लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य जिसको नहीं है वह अलिंग ग्रहण है, इस प्रकार आत्मा, द्रव्यसे नहीं आलिंगित ऐसी शुद्ध पर्याय है, ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

सम्यग्ज्ञानकी पर्याय त्रिकाली ज्ञानगुणको स्पर्श नहीं करती है, इस प्रकार यहां कथन है। लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञानका कारण; ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य अर्थात् त्रिकाली ज्ञानगुण; प्रत्यभिज्ञान अर्थात् यह वही है ऐसा जो भूत-वर्तमानकी संधिवाला ज्ञान वह प्रत्यभिज्ञान है। पूर्वकी स्मृति और प्रत्यक्षके योगरूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। ऐसे प्रत्यभिज्ञानका कारण सामान्य त्रिकाली गुण है। आत्मा वह सामान्य त्रिकाली गुणको नहीं स्पर्शित ऐसा शुद्ध पर्याय है—इस प्रकार कहा है।

सम्यग्ज्ञानकी पर्याय शरीरके कारण नहीं है, शुभभावके कारण नहीं है, उसी प्रकार त्रिकाली ज्ञानगुण सामान्य जो कि शक्तिरूप है उसके कारण भी नहीं है। यदि वह पर्याय द्रव्यके कारण

है इस प्रकार कहो तो पर्यायका 'है पना' ('अस्तित्व') नहीं रहता है, अहेतुक सत्पना (अस्तित्व) नहीं रहता है।

१८ वें वचनमें कहा था कि आत्म द्रव्य सामान्य अभेद है, वह गुणभेद-विशेषको स्पर्श नहीं करता है। १९ वें वचनमें कहा था कि आत्म द्रव्य सामान्य पर्यायके भेद-विशेषको स्पर्श नहीं करता है। २० वें वचनमें इससे भी सूक्ष्म बात है। साधकदशामें जो सम्यग्ज्ञानकी पर्याय है अथवा मोक्षमें केवलज्ञानकी जो पर्याय है वह विशेष है। वह विशेष शुभभाव अथवा शरीरके आधारसे तो नहीं है परन्तु वह, त्रिकाली ज्ञानगुण सामान्य एकरूप है, उसके कारण भी नहीं है। शुद्ध पर्याय रूप जो विशेष है वह सामान्यके आधारसे प्रगट होती है ऐसा माना जाय तो विशेष, जो कि निरपेक्ष तत्त्व है, उसकी स्वाधीनता नहीं रहती है, पराधीन हो जाता है, और अनित्यसत् शुद्ध पर्यायका, जो 'है', वह 'है' का अभाव हो जाता है अतः शुद्धपर्याय 'है', वह ध्रुव सामान्यका स्पर्श नहीं करती है—चुम्बन नहीं करती है। स्वतन्त्र अनुभवकी पर्याय सामान्य द्रव्यको स्पर्श नहीं करती है क्योंकि पर्याय द्रव्यको निश्चयसे स्पर्श करे तो दोनों एक हो जायें।

यहां कोई प्रश्न करता है कि शुद्ध पर्याय 'है', इस प्रकार कहकर पर्यायका आश्रय तो नहीं कराना है ?

उत्तरः—नहीं, पर्यायका आश्रय नहीं कराना है। निर्विकारी पर्याय जो विशेष है वह सामान्यके आधारसे नहीं है इस प्रकार कहना है। निरपेक्षता सिद्ध करनी है।

निर्विकारी ज्ञान पर्याय सामान्य ज्ञानगुणको स्पर्श करती हो तो सामान्य और विशेष एक हो जायें, भिन्न नहीं रहें। निर्विकारी पर्यायमें ध्रुवसामान्यका अभाव है। अतः आत्मा, द्रव्यसे नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध पर्याय है।

शुद्ध पर्याय अहेतुक है।

एक ओर त्रिकाली सामान्यज्ञान गुण है, दूसरी ओर ज्ञान की निर्मल पर्याय है, दोनों एकही समय हैं, समयभेद नहीं है। एक समयकी पर्यायमें त्रिकाली गुणका अभाव है। इस प्रकार शुद्ध पर्याय अहेतुक है, अकारणीय है, उसे कोई कारण नहीं है।

१. वीतरागी निमित्त मिलनेके कारण शुद्ध पर्याय प्रगट हुई, इस प्रकार कोई कहता है तो वह स्वतन्त्र नहीं रहती है, पराधीन हो जाती है।

२. शुभराग व्यवहार है अतः उसके कारण शुद्ध पर्याय प्रगट हुई इस प्रकार कोई कहे तो भी वह स्वतन्त्र नहीं रहती है, पराधीन हो जाती है।

३. 'त्रिकाली ज्ञानगुण सामान्य है अतः सम्यग्ज्ञानकी पर्याय प्रगट हुई' यह भी ठीक नहीं है क्योंकि ऐसा होने पर, शुद्ध-पर्याय 'है', इस प्रकार नहीं रहता है। शुद्ध पर्याय स्वतंत्र सत् अहेतुक है इस प्रकार यहां कहना है।

४. वेदन—जानना तो पर्यायमें ही है, अप्रगट शक्तिरूप त्रिकाली सामान्यको कोई वेदन, क्रिया अथवा जानना नहीं है—

इस प्रकार पर्याय सत्‌में आत्मा जाग्रत हुआ, तब उस शुद्ध पर्यायको आत्मा कहा।

जो शुद्ध पर्यायका अनुभव करता है वह आत्मा है, जो राग का अनुभव करता है वह आत्मा नहीं है। निमित्त विकल्प और भेद परसे दृष्टि छूटकर, चिदानंद स्वभावकी दृष्टि हुई वह संवर निर्जरा की अनुभूतिरूप शुद्ध पर्याय हुई वही आत्मा है—इस प्रकार स्वज्ञेयको जान।

इस प्रकार स्याद्‌वाद सहित स्वज्ञेयको यथार्थ जानना वह धर्मका कारण है।
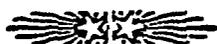
[माघ कृष्णा ९, शुक्रवार]

आज १८-१९-२० वें वचन पुनः वांचते हैं।

(१८) आत्मा गुणभेदसे नहीं स्पर्शित ऐसा शुद्ध द्रव्य है—इस प्रकार स्वज्ञेयको जान।

यह आत्मा कैसा है कि जिसके जाननेसे धर्म हो? धर्मका करनेवाला आत्मा है। धर्मके करनेमें शांति है अथवा बाहरसे आती है? कर्ता कहो कि धर्मरूप परिणत कहो—एक ही बात है। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी पर्याय वह धर्म है। आत्माको जाननेसे अविकारी परिणाम होता है अर्थात् धर्म होता है। हे शिष्य! तू

आत्माको अलिंगग्रहण जान। वह किसी चिह्न द्वारा पहिचानने योग्य नहीं है। जो वीस प्रकारसे कहा है वैसा आत्माको जाने तो उसके लक्षसे सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्रकी पर्याय प्रगट होगी।

पांच लाख रुपया किस प्रकार कमाया जाये उसकी रीति (विधि) किसीको बतलाई जाये तो कितनी रुचिसे सुनता है? वह रुपया तो जड़ है उसे इष्ट मानकर ममता करता है। वह ममता पैसेमें नहीं है उसी प्रकार आत्मामें भी नहीं है। अज्ञानी जीव नवीन नवीन ममता उत्पन्न करता है। आत्मवस्तुमें कृत्रिमता नहीं है, कृत्रिमता नवीन नवीन उत्पन्न करता है। उसे दूर कर स्वभाव सन्मुख होनेसे सम्यक्त्वकी नवीन पर्याय प्रगट होती है। वह कैसे चैतन्य स्वरूप आत्मा पर दृष्टि करनेसे प्रगट होती है? आत्मा कौन है? यह बात इस वचनमें कहते हैं।

हे भव्य! तू आत्माको अलिंगग्रहण जान, इस प्रकार कुन्दकुन्दाचार्यदेव कहते हैं। इस १८ वें वचनमें अलिंगग्रहणका अर्थ: अ=नहीं, लिंग=गुण, ग्रहण=अर्थावबोध अथवा ज्ञान। लिंग और ग्रहणके अर्थ भिन्न किये हैं। देखो, लिंगका अर्थ तो गुण कहा है परन्तु गुण तो सामान्य है, गुण तो अनेक हैं, उनमेंसे कौनसा गुण? तो कहते हैं कि ज्ञान गुण। ग्रहण शब्द में से ज्ञान गुण निकाला है। अर्थात् आत्माको ज्ञान गुण नहीं है, अर्थात् जिसमें ज्ञान गुण और आत्मा गुणी ऐसा भेद नहीं है, वह आत्मा शुद्ध द्रव्य है।

१. शरीर-मन-वाणीकी क्रिया तो आत्मामें नहीं है क्योंकि वह तो अजीव पदार्थ है, अतः उसके लक्षसे धर्म नहीं हो सकता है।

२. दया, दान, काम, क्रोध आदिके भाव औपाधिकभाव हैं, कृत्रिम हैं, वे वस्तुस्वरूपमें नहीं हैं अतः उनके लक्षसे धर्म नहीं होता है।

३. आत्मा अनंतगुण रूप एक अभेद वस्तु है। उस अभेद वस्तुमें 'यह ज्ञान गुण है' ऐसा भेद उत्पन्न करने पर वस्तु अभेद नहीं रहती है। ऐसे भेदके लक्षसे भी धर्म नहीं होता है अतः यहां कहते हैं कि अभेद आत्मा ज्ञान गुणका स्पर्श नहीं करता है इस प्रकार तू आत्माको जान।

यह ज्ञेय अधिकार है। ज्ञेय आत्मपदार्थ कैसा है कि जिसकी श्रद्धा करनेसे सम्यग्दर्शन हो? सम्यग्दर्शन अर्थात् प्रथम धर्म-अनादिकालसे नहीं प्रगट हुआ अपूर्व सम्यग्दर्शनरूपीधर्म, कैसे आत्मा को श्रद्धामें लेने से होता है?

आत्मस्वरूपसे विपरीत मान्यतावाला अजैन है— मिथ्यादृष्टि है।

१. आत्मामें परवस्तुका अभाव है अतः जो जीव आत्मा को शरीरवाला या कर्मवाला मानता है वह मिथ्यादृष्टि है।

२. तथा आत्मामें शुभाशुभ परिणाम होता है वह पुण्य-पाप तत्त्व है, आस्रव तत्त्व है, उसे जीवतत्त्व मानना वह भी मिथ्यादृष्टि है।

३. आत्मा एक अभेद वस्तु है उसमें यह ज्ञानगुण है और यह ज्ञानगुणका धारक गुणी है इस प्रकार भेद उत्पन्न करके उसमें अटकना वह भी मिथ्यादृष्टि है।

अतः इस वचनमें कहते हैं कि अभेद आत्मा ज्ञानगुणको स्पर्श नहीं करता है, आलिंगन नहीं करता है, वह एकरूप शुद्ध असंगी तत्त्व है। शरीर-मन-वाणी रहित, कर्म रहित; शुभाशुभ परिणाम जितना नहीं है, उसी प्रकार गुणभेदमें रुके, वैसा भी नहीं है; परन्तु शुद्ध अभेद एकाकार परिपूर्ण आत्मा है उसे दृष्टिमें लेना-श्रद्धामें लेना वह सम्यग्दर्शन है।

परके अभावस्वभाववाला आत्मा

१. शरीर, मन, वाणी, कर्म, जड़ वस्तुएं तथा अन्य आत्मायें उन सबका इस आत्मामें अभाव है अर्थात् वह उनके अभाव स्वभाववाला है।

२. पुण्य-पापके भाव त्रिकाली स्वभावमें नहीं हैं अतः आत्मा उनके अभाव स्वभाववाला है। आत्माको विकारवाला माननेसे सच्ची श्रद्धा नहीं होती है।

३. सामान्यमें विशेषका अभाव है। निश्चयसे सामान्य पदार्थ विशेष को स्पर्श करे तो सामान्य और विशेष एक हो जाये। सामान्य विशेषके भेद रहित अभेद एकाकार आत्मा वह शुद्ध द्रव्य है।

इस गाथामें लिंगका अर्थ गुण किया है। परन्तु गुण तो बहुत हैं, अतः ग्रहण शब्दका अर्थ ज्ञान किया है। अभेद आत्मा ज्ञानगुणको स्पर्श नहीं करता है।

अनादिसे अज्ञानी जीव मानता है कि एक शरीर अन्य शरीरको रोकता है, स्पर्श करता है; एक आत्मा शरीरको स्पर्श

करता है, कर्मको स्पर्श करता है और अन्य आत्माको स्पर्श करता है; त्रिकाली स्वभाव विकारको स्पर्श करता है और गुणभेदको स्पर्श करता है परन्तु यह सब मान्यता भूल से भरी (भ्रमपूर्ण) है। एकका दूसरेमें अभाव होनेसे एक दूसरेको परमार्थसे स्पर्श नहीं करता है।

इस प्रकार आत्मा गुणविशेषसे नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध द्रव्य है। वस्तु अभेद है उसमें गुणगुणीका भेद नहीं पड़ता है। सम्यग्दर्शनका विषय सम्पूर्ण आत्मा है—ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

आत्मा अभेद-एकरूप वस्तु है, वह ज्ञानविशेषको स्पर्श नहीं करता है। उसे जाने विना धर्म नहीं होता है। धर्म धर्मीमें से उत्पन्न होता है। अभेद एकरूप आत्माकी श्रद्धा करनेसे नवीन धर्म पर्याय प्रगट होती है।

त्रिकाली अभेद स्वभावमें ज्ञानादि गुणभेदका अभाव है।

अभेद आत्मा ज्ञानादि गुणभेदको स्पर्श नहीं करता है और सम्पूर्ण द्रव्यमें ज्ञानगुणके भेदका अभाव है। दो वस्तु हों उनमें किसी प्रकार अभाव वतलाते हैं। जो वस्तु ही नहीं हो तो अभाव वतलाया नहीं जा सकता है। अतः आत्मामें ज्ञान आदिका गुणभेद है, कोई गुणभेद ही नहीं माने तो उसका व्यवहार ही सच्चा नहीं है। भेद और अभेदरूप वस्तु एकही समय है। इस प्रकार व्यवहार ज्ञान करानेके पश्चात् अभेद द्रव्यमें ज्ञानगुणके भेदका अभाव वतलाया है। भेदके लक्षसे सम्यग्दर्शन नहीं होता है परन्तु अभेदके लक्षसे सम्यग्दर्शन होता है।

इस प्रमाणसे गुणभेदसे नहीं स्पर्शित अभेद आत्मा तेरा स्वज्ञेय है इसप्रकार तू जान। इसप्रकार श्रद्धा-ज्ञान करनेसे धर्म होता है।

(१९) आत्मा ज्ञान पर्याय विशेषसे नहीं स्पर्शित शुद्ध द्रव्य है—इस प्रकार स्वज्ञेयको जान।

लिंग अर्थात् पर्याय ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध विशेष जिसको नहीं है वह अलिंग ग्रहण है। इस प्रकार आत्मा पर्याय विशेषसे नहीं आलिंगित ऐसा शुद्धद्रव्य है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

यहां लिंग अर्थात् पर्याय, परन्तु पर्याय तो अनंत हैं अतः ग्रहणका अर्थ ज्ञानकी पर्याय लिया है। वह जिसको अर्थात् आत्माको नहीं है, वह शुद्ध द्रव्य है। यहां आत्माको ज्ञानकी पर्याय नहीं है अर्थात् शुद्ध द्रव्य एक पर्याय जितना नहीं है। त्रिकाली द्रव्यमें क्षणिक पर्यायका अभाव है इस प्रकार कहना है।

सम्यग्दर्शन किसके आश्रयसे प्रगट होता है, वह कहते हैं।

१. त्रिकाली स्वभाव यदि निमित्तका आश्रय करे तो परके साथ एकताबुद्धि होती है, सम्यग्दर्शन नहीं होता है।

२. त्रिकाली स्वभाव यदि दया दानादिका आश्रय करे तो आत्मा विकारी हो जाये और इसलिये धर्म होनेका प्रसंग नहीं बने।

३. त्रिकाली स्वभावको यदि निर्मल पर्याय जितना माने तो भी धर्म नहीं होता है।

(१) शुद्ध स्वभाव त्रिकाली है और पर्याय एक समय की है।

(२) शुद्ध स्वभाव अंशी है और पर्याय वह अंश है।

(३) शुद्ध स्वभाव सामान्य है और पर्याय वह विशेष है।

निश्चयसे अंशी स्वभाव अंशको स्पर्श करे तो अंशी और अंश पृथक् नहीं रहते हैं, जो कि वस्तुस्वरूपके विपरीत है। अतः आत्मा ज्ञानपर्यायसे नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध द्रव्य है।

अपने स्वभावका अखंडपना भूलकर अज्ञानी जीव परमें अखंडपनेकी कल्पना करता है।

जिस प्रकार लौकिकमें किसीके पास पांच करोड़ रुपयेकी पूंजी हो तो उसके पुत्र, पुत्री, पुत्रवधू सब ऐसा मानते हैं कि हम पांच करोड़के स्वामी हैं। घरमें २५ व्यक्ति हों उनमें एक व्यक्तिको पचीसवां भाग पूंजी मिलेगी, तो भी कहता है कि हम पांच करोड़के स्वामी हैं। वहां खण्डभेद नहीं करता है क्योंकि वहां रुचि है। उसी प्रकार अंतरस्वभाव सम्पूर्णद्रव्यको लक्षमें लेवे वैसा है; वह खण्ड खण्ड दशाको अथवा अधूरी दशाको लक्षमें लेवे वैसा नहीं है। स्वयं अखण्ड वस्तु है, वह पर पदार्थसे रहित, विकारसे रहित, गुणभेद से रहित और निर्मल पर्यायके भेदसे रहित है। जिसे उसका भान नहीं है वह बाहरके संयोगोंमें जो किसी काल में अपने साथ नहीं रहते, अखंडपनेकी कल्पना करता है। वे संयोग किसी कालमें उसके नहीं हो सकते और अखण्डपने तो उसके साथ रहने वाले ही नहीं

है, तो भी अज्ञानी उनमें अखण्डपना मानकर सुख मिलनेकी आशा करता है, वह उसका मोह है और वह संसारका कारण है।

धर्मकी रुचिवाले जीवको त्रिकाली स्वरूपकी श्रद्धा करनी चाहिये।

अतः जिसे संसारका नाश करना हो उसे अखंड ज्ञायक-स्वभावकी श्रद्धा करनी चाहिये। जिस स्वभावमें विकारका अभाव है, जिस स्वभावमें गुणभेद नहीं है, उसी प्रकार जो स्वभाव निर्मल ज्ञान पर्याय जितना नहीं है परन्तु त्रिकाली एकरूप है, जो नित्यानंद ध्रुव वस्तु है उसके आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन और धर्म होता है।

त्रिकाली स्वभावको लक्षमें लिये बिना, जो जीव मात्र क्रियाकांडमें धर्म मानता है उसे कदापि धर्म नहीं होता है।

१. जिनमन्दिर आदि जड़ पदार्थ हैं उन्हें आत्मा नहीं कर सकता है, तो भी आत्मा उनकी क्रिया कर सकता है इस प्रकार मानना मिथ्यात्व है।

२. तथा जिनमन्दिरके कारण राग हुआ अथवा राग हुआ इसलिये जिनमन्दिर बना ऐसा मानना मिथ्यात्व उत्पन्न करता है।

३. जिनमन्दिरका शुभराग हुआ अतः जीवको धर्म होगा इस प्रकार माने वह मिथ्यात्व उत्पन्न करता है।

४. पर्याय पर दृष्टि रखे परन्तु अखंड द्रव्यको ध्यानमें नहीं ले तो भी मिथ्यात्व होता है।

त्रिकाली शुद्धस्वभाव सामान्यमें निर्मल ज्ञानपर्याय विशेषका अभाव है।

अतः जीवको जिसप्रकार है उस प्रकार आत्माका ज्ञान करना चाहिये। इस वचनमें निर्मल पर्यायसे भी नहीं स्पर्शित ऐसा शुद्ध द्रव्य कहना है, अर्थात् त्रिकाली द्रव्यमें वर्तमान ज्ञानपर्यायका भी अभाव है। परन्तु वह अभाव कब कहलाता है ? प्रथम, दो अंश हैं, ऐसा बतलानेके पश्चात् अभाव कहते हैं। यहां शुद्ध पर्याय भविष्यमें प्रगट करनी है ऐसा नहीं लेना है क्योंकि जो वर्तमानमें न हो, उसके साथ अभाव वर्तता है ऐसा नहीं कहा जा सकता है। परन्तु त्रिकाली द्रव्य जिस समय है उसी समय शुद्ध ज्ञान पर्याय है, भूत भविष्यमें नहीं है। इस प्रकार व्यवहारसे पर्याय सिद्ध की है, 'है' उसका ज्ञान कराया है, तत्पश्चात् कहा है कि शुद्ध ज्ञानपर्याय तो वर्तमान पर्यन्त हैं और उस वर्तमान पर्यायका त्रिकालीस्वभावमें अभाव है।

निर्मल पर्याय अंश है उसके लक्षसे सम्यग्दर्शन नहीं होता है परन्तु अंशी आत्माके लक्षसे सम्यग्दर्शन होता है अतः ज्ञानकी पर्याय जो अंश है उसका अंशी आत्मामें अभाव बतलाकर, अंशी शुद्ध द्रव्यका लक्ष कराया है। आत्मा सामान्य है और पर्याय विशेष है। सामान्यमें विशेषका अभाव है; इस प्रकार कहकर सामान्य द्रव्य का लक्ष कराया है।

इस वचनमें अलिंग ग्रहणका अर्थ : अ=नहीं, लिंग= पर्याय, ग्रहण—ज्ञानकी पर्याय—वह जिसको नहीं है अर्थात् आत्मा

शुद्ध ज्ञानकी पर्यायको भी स्पर्श नहीं करता है—ऐसा शुद्ध द्रव्य है इस प्रकार स्वज्ञेयको जान।

ऐसा स्वज्ञेय श्रद्धा-ज्ञानमें लेना वह धर्म का कारण है।

(२०) आत्मा सामान्य त्रिकालीज्ञानगुणसे नहीं स्पर्शित ऐसा शुद्ध पर्याय है इस प्रकार स्वज्ञेयको जान।

लिंग अर्थात् प्रत्यभिज्ञानका कारण ऐसा जो ग्रहण अर्थात् अर्थावबोध सामान्य जिसको नहीं है वह अलिंगग्रहण है; इस प्रकार आत्मा द्रव्यसे नहीं आलिंगित ऐसा शुद्ध पर्याय है ऐसे अर्थकी प्राप्ति होती है।

पहले प्रत्यभिज्ञानका अर्थ कहते हैं। आत्मामें अनंत गुण हैं, उसमें समय समय अवस्था होती है। गुण ध्रुव रहते हैं। प्रत्यभिज्ञान एक समयकी ज्ञानकी पर्याय है। यह वही वस्तु है जो पूर्वकालमें देखी थी ऐसे योगरूप ज्ञानको प्रत्यभिज्ञान कहते हैं। उस प्रत्यभिज्ञानकी पर्यायका कारण त्रिकाली ज्ञान गुण सामान्य है।

आत्मा त्रिकाली ज्ञानगुण सामान्यसे नहीं स्पर्शित शुद्ध पर्याय है, (लक्षण दृष्टिसे) अविकारीज्ञानकी पर्याय त्रिकाली गुणके आधारसे प्रगट नहीं होती है, निश्चयसे उसको सामान्यका भी आधार नहीं है—इस प्रकार यहां सिद्ध करना है।

देखो ! यहां सूक्ष्म बात ली है। अठारहवें वचनमें इसप्रकार कहा था—त्रिकाली द्रव्य सामान्य वह ज्ञानरूप गुणभेदको स्पर्श नहीं करता है। आत्मामें ज्ञानगुणका भेद नहीं है अर्थात् आत्मा

सामान्य अभेदरूप है इस प्रकार कहा था। उन्नीसवें वचनमें इस प्रकार कहा था—त्रिकाली ज्ञानगुणमें ज्ञानकी पर्याय नहीं है अर्थात् सामान्यमें विशेष नहीं है, सामान्यमें विशेषका अभाव है इसप्रकार कहा था। यहां बीसवें वचनमें कहते हैं कि एक समयकी पर्यायमें त्रिकाली ज्ञानगुणका अभाव है। ज्ञानगुणकी पर्याय त्रिकाली ज्ञान-गुणके आधारसे नहीं है, विशेष सामान्यके आधारसे नहीं है। एक समयकी सम्यग्ज्ञानकी पर्याय अथवा केवलज्ञानकी पर्याय निरपेक्ष है। त्रिकाली गुणके आधारसे वह प्रगट नहीं होती है इस प्रकार निरपेक्षता बतलाई है। इस प्रकार आत्मा त्रिकाली ज्ञानगुणमे नहीं स्पर्शित ऐसा शुद्ध पर्याय है इस प्रकार यहां बतलाया है। (यहां अस्तिगुणकी मुख्यता से कथन है ऐसा समझना)

निर्विकारी ज्ञानकी पर्याय प्रगट करनी है उसका यहां प्रकरण नहीं है। शुद्ध पर्याय 'है' उसका प्रकरण है। शुद्ध पर्याय है वह विशेष है। विशेष 'है' इस प्रकार कहते ही वह त्रिकाली ज्ञानगुण सामान्यके आधारसे नहीं है इस प्रकार निर्णय होता है। पदार्थ 'है' इस प्रकार कहते ही, वह परसे नहीं है, इस प्रकार निर्णय होता है। पर्याय 'है' इस प्रकार कहो, तत्पश्चात् परसे 'है' ऐसा कहो तो उसका 'है' पना सिद्ध नहीं होता है। विशेषकी अपेक्षासे सामान्य पर है, क्योंकि विशेष वह सामान्य नहीं है।

सामान्यके आधारसे विशेष माननेमें आये तो विशेष निरपेक्ष सिद्ध नहीं होता है। विशेषको पराधीन माने तो पराधीन दशा होती है, वह पर्यायबुद्धि है।

आत्मा अनादिसे द्रव्यसे शुद्ध है और उसके आश्रय करनेसे निर्मल पर्याय प्रगट होती है अतः पर्यायमें द्रव्यका अभाव वर्तता है यहां ऐसा नहीं बतलाना है। यहां तो प्रगटित शुद्ध पर्याय है, उसकी बात है। शुद्ध पर्याय पहले नहीं थी और तत्पश्चात् द्रव्यके आश्रयसे प्रगट हुई अतः पर्यायमें द्रव्यका अभाव वर्तता है इस प्रकार कोई तर्क करें तो वह तर्क मिथ्या है, वह बात ही यहां नहीं लेना है। यहाँ तो निरपेक्ष कथन करना है। शुद्ध पर्याय पहले नहीं थी और बादमें प्रगट हुई, ऐसा प्रश्न ही नहीं उठता है। निरपेक्ष कहो और सामान्य के आधारसे कहो तो निरपेक्षपना स्वतन्त्र नहीं रहता है। तथा शुद्ध पर्यायमें त्रिकाली सामान्य ज्ञानगुणका अभाव है, अर्थात् विशेषमें सामान्यका अभाव है। अभाव किनमें बतलाया जाता है? दो अंश वर्तमानमें हों उनमें अभाव बतलाया जाता है। जो वह अस्तिरूप वस्तु ही नहीं हो तो अभाव नहीं बताया जा सकता है।

जिस प्रकार १८ वें वचनमें कहा था कि द्रव्य अभेद है उसी समय ज्ञानादि गुणभेद है तो सही किन्तु अभेद स्वभावमें ज्ञानादिगुणभेदका अभाव है अतः द्रव्य ज्ञानको स्पर्श नहीं करता है।

१९ वें वचनमें कहा था कि गुण सामान्य है उसीसमय ज्ञानकी निर्मल पर्याय है परन्तु सामान्य शक्तिस्वरूप गुणमें ज्ञानकी निर्मल पर्यायका अभाव है। अर्थात् सामान्यमें विशेषका अभाव है अतः द्रव्य पर्यायको स्पर्श नहीं करता है।

यहां २० वें वचनमें इस प्रकार कहते हैं कि शुद्ध पर्याय है उसी समय त्रिकाली ध्रुवज्ञानगुण है। परन्तु ज्ञानकी शुद्ध पर्यायमें

ज्ञानके ध्रुव सामान्यपनेका अभाव है अर्थात् विशेषमें सामान्यका अभाव है अतः शुद्ध पर्याय सामान्य ज्ञानगुणको स्पर्श नहीं करती है।

शुद्ध पर्याय में सामान्यका अभाव है क्योंकि विशेषमें सामान्यका अभाव नहीं हो तो विशेष और सामान्य एक हो जायें। वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है। विशेष विशेपसे ही है, सामान्यसे नहीं है।

विशेष निरपेक्ष है यह सिद्ध करना है।

१८-१९-२० वें वचनमें दो दो प्रकार वर्तमानमें सिद्ध करके एक दूसरेको स्पर्श नहीं करते हैं इस प्रकार कहकर अभेदकी श्रद्धा कराना है।

१८ वें वचनमें गुणभेदका गुणीमें अभाव बताकर, अभेद गुणी सम्यग्दर्शनका विषय होता है इस प्रकार बतलाया है।

१९ वें वचनमें प्रगट हुई सम्यग्ज्ञानकी पर्याय है उसे सामान्य ध्रुव ज्ञाता दृष्टा सदृश स्वभाव स्पर्श नहीं करता है इस प्रकार बतलाकर, सामान्य ध्रुव सदृश स्वभावरूप आत्मा सम्यग्दर्शनका विषय है इस प्रकार बतलाया।

२० वें वचनमें इस प्रकार कहते हैं कि वर्तमान निर्मलज्ञान पर्याय ध्रुव ज्ञानस्वभावको स्पर्श नहीं करती है। शुद्ध पर्याय वर्तमान प्रगट है। 'है' उसकी बात है। शुद्ध पर्याय पहले नहीं थी और तत्पश्चात् ध्रुवके लक्ष्यसे प्रगट होगी उस सापेक्षताकी बात ही नहीं लेनी है। शुद्ध पर्याय है, है और है, सामान्य ध्रुव भी

है। परन्तु शुद्ध पर्याय सामान्यके कारण नहीं है क्योंकि विशेषमें सामान्यका अभाव है।

१. शुद्ध प्रगट हुई पर्याय, देव-शास्त्र-गुरु निमित्त आया इस कारण प्रगट होती है इस प्रकार नहीं है।

२. शुद्ध प्रगट हुई पर्याय, पुण्यका शुभभाव है अतः प्रगट हुई है, इस प्रकार नहीं है।

३. शुद्ध प्रगट हुई पर्याय, सामान्य ज्ञानगुण शक्तिरूप है अतः प्रगट हुई है, इस प्रकार भी नहीं है।

४. पूर्वकी अनुभूतिके कारण वर्तमान अनुभूति हुई इस प्रकार भी नहीं है। शुद्ध पर्याय है—वह निरपेक्ष है, अहेतुक है।

इस प्रकार निर्णय करने पर निमित्तों और शुभरागपरसे लक्ष तो छूटता ही है, उसी प्रकार विशेष और सामान्यके भेद परसे भी लक्ष छूटकर एकाकार वस्तु पर लक्ष जाता है।

सब गुण असहाय कहे हैं। एक गुणमें अन्य गुणका अभाव है, उसे अतद्भाव कहते हैं। दर्शन गुण ज्ञानकी अपेक्षा नहीं रखता है और ज्ञानगुण दर्शनकी अपेक्षा नहीं रखता है। गुण असहाय हैं, स्वतन्त्र निरपेक्ष हैं, उसी प्रकार ज्ञानकी शुद्ध प्रगट पर्याय है वह ज्ञानगुण सामान्यकी अपेक्षा नहीं रखती है। शुद्ध पर्यायमें त्रिकाली ज्ञानगुणका अभाव है। एक एक शुद्ध पर्याय—सम्यग्ज्ञानकी अथवा केवलज्ञानकी-असहाय है, निरपेक्ष है।

यहां कोई प्रश्न करता है कि निरपेक्ष पर्याय कह कर क्या पर्यायदृष्टि करानी है ?

उत्तर: नहीं, पर्यायदृष्टि नहीं करानी है। समय समयकी पर्याय सत् अहेतुक है। वह निमित्तकी अथवा रागकी अपेक्षा नहीं रखती है, किन्तु ज्ञान गुण सामान्य है उनकी भी अपेक्षा नहीं रखती है। इस प्रकार निरपेक्षता बतलाई है। शुद्ध पर्यायरूप परिणमित है वही आत्मा है, आत्मा स्वयं ही शुद्ध पर्याय है। इस प्रकार बतलाकर द्रव्यदृष्टि कराई है। सामान्य तथा विशेषके भेद वाला आत्मा सम्यग्दर्शनका ध्येय नहीं है। शुद्ध पर्याय वही आत्मा है इस प्रकार कहकर अभेददृष्टि कराई है।

इस प्रमाणसे यहां अलिंग ग्रहणका अर्थ: अ=नहीं, लिंग=प्रत्यभिज्ञानका कारण, ग्रहण=ज्ञानगुण त्रिकाली सामान्य। अर्थात् जिसको ज्ञानगुण सामान्य नहीं है ऐसा आत्मा अलिंगग्रहण है। इस प्रकार आत्मा त्रिकाली ज्ञानगुणसे नहीं स्पर्शित ऐसा शुद्ध पर्याय है। आत्मा स्वयं ही शुद्ध पर्याय है। आत्मा और शुद्ध पर्यायमें भेद नहीं है, इसप्रकार तेरे स्वज्ञेयको जान। ऐसे स्वज्ञेय आत्माको जानना-श्रद्धा करना वह धर्म है।